R.N.I. No. 2321/57

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

अक्टूबर 2018

अंक 9

ओ३म्

तपोभूमि

मासिक

महर्षि वाल्मीकि

सम्पादकीय

भारत के लिए सर्वनाश के द्वार खोलता तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग

भारतवर्ष की वर्षों परतन्त्रता का दुष्प्रभाव ऐसा पड़ा कि हम अपनी मौलिक संस्कृति से दूर से दूरतर होते चले गए। विशेषकर अंग्रेजों के सानिध्य में आने के बाद तो हमने अपनी सभ्यता और संस्कृति को पूरी तरह रौंद के रख दिया। हमारे जो सांस्कृतिक मूल्य थे जिनके माध्यम से हमने करोड़ों वर्षों तक शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया उसको आंग्ल शिक्षा का चश्मा लगाए तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग ने संकीर्ण सामन्तवादी सोच बताया और जिन नियमों से व्यक्तित्व का निर्माण संभव था, उन नियमों को तोड़ने में उन्होंने अपना गर्व समझा और इस विनाशकारी सोच को प्रगतिवादी सोच बताया। हमारे देश का दुर्भाग्य था कि अधिकांश जनता अशिक्षित थी और वही भारतीय मूल्यों में पली थी इसलिए संस्कारवान थी लेकिन अशिक्षित होने के कारण वे शासन से दूर हो गये और जो लोग शासन में आए वे शिक्षित थे लेकिन भारतीय संस्कृति के संस्कारों से सर्वथा हीन थे और हैं। इस कारण शासन की व्यवस्था कुसंस्कारी लोगों के द्वारा पतित हो गयी जिसका दुष्परिणाम सहशिक्षा आदि का शिक्षा जगत में पदार्पण कराना रहा। उस शिक्षा से दीक्षित युवक-युवतियां वासना की कीड़े मात्र बनकर रह गये। फिर वही उच्च पदों के अधिकारी बने जब कुसंस्कारी अधिकारी बन जाये फिर समाज और राष्ट्र दुर्दशा में क्या शंका।

आज हम अपने चारों ओर चोरी, डकैती, अपहरण, लूटपाट, व्यभिचार आदि का ताण्डव नृत्य देख रहे हैं। ये सारा कृत्य उन्हीं कुसंस्कारी लोगों का है जिन्होंने जीवन में संयम का पाठ सीखा ही नहीं। आश्चर्य तो तब हुआ जब इसी कुसंस्कारी शिक्षा में पले सुप्रीम कोर्ट के जजों ने समलैंगिकता को वैधानिक घोषित करते हुए व्यष्टिगत भावों को प्रमुखता दी। समष्टिगत उसके दुष्प्रभावों को बिल्कुल नहीं सोचा। लगता है उनमें इस प्रकार की सोच के तत्व पड़े ही नहीं थे। उन्होंने मनुष्य को मात्र भोग विलासों का कीड़ा समझ लिया। शायद उन्हें ये पता ही नहीं था कि जिस कुकृत्य को तुम वैधानिक रूप दे रहे हो उसी ने हमारे राष्ट्र को सर्वनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। इस स्थिति में छोटे-छोटे बच्चे और बच्चियों के साथ जो कुकर्मों को बढ़ावा मिल रहा है उसके पीछे ऐसे जजों द्वारा लिए गये निर्णयों का भारी पाप पल रहा है। आज हम देखते हैं अपने सम्बन्धियों, पड़ौसियों, विद्यालयों में शिक्षा देने वाले अध्यापकों की वासना के शिकार छोटे-छोटे बच्चे और बच्चियों के बलात्कार के बाद या वे मार दिये जाते हैं या फिर उनका जीवन सब प्रकार से बर्बाद हो जाता है। फिर यही आन्दोलन करते हैं और हाय-हाय कर बलात्कार आदि न रोक पाने पर शासन और प्रशासन को उत्तरदायी मानते हैं।

आज हम देखते हैं कि अपने पवित्र विद्यामन्दिरों को, तो वे विद्यामन्दिर कम वैश्यालय अधिक प्रतीत

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–64 संवत्सर 2075 अक्टूबर 2018 अंक 9

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अक्टूबर 2018

सृष्टि संवत्
1960853119

दयानन्दाब्दः 194

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा 0 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
न्याय और दया	–श्यामबिहारी मिश्र	5–8
विरजानन्द प्रकाश	–भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण	9–12
भाग्य और उद्यम	–बाबू सूरजभान	13–15
सच्ची और झूठी सफलता	–पं0 माधवराव	16–19
स्वास्थ्य चर्चा		20–23
भक्त की अभिलाषा	–कविवर सनेही (सरस्वती)	24–25
भक्ति रहस्य	–स्वामी सत्यानन्द महाराज	26–27
प्रारम्भिक शिक्षा के रूप	–डॉ0 गोकुलचन्द नारंग	28–30
जब हिमालय रो पड़ा	–आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक	31–33
अन्तराष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन दिल्ली		34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

दूर चली जा हे असमृद्धि! हे अराति!

परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते।। –अथर्व0 5। 7। 7

शब्दार्थः–

(परः अपेहि) दूर चली जा (असमृद्धे) हे असमृद्धि! (ते हितम्) तेरे शस्त्र को, हम (वि नयामसि) अपने से दूर पहुँचा देते हैं। (अराते) हे अदायिनी! हे शत्रुभूते! (अहं त्वा) मैं तुझे (नि–मीवन्तीम्) निरन्तर हिंसा करने–करानेवाली और (नि–तुदन्तीम्) निरन्तर व्यथा पहुँचानेवाली (वेद) जानता हूँ।

भावार्थः–

असमृद्धि या गरीबी राष्ट्र की बड़ी शत्रु है। जब किसी राष्ट्र में असमृद्धि व्याप जाती है, तब संकट आ खड़ा होता है। वर्षा नहीं होती, दुर्भिक्ष छा जाता है, प्रजा अन्न के दानों को तरसने लगती है, व्याधियाँ घर कर लेती हैं। भुखभरी, नग्नता, भयंकर व्याधियाँ, मृत्यु आदि ही असमृद्धि के रूप हैं, जिनसे यह राष्ट्रवासियों को पीड़ित–व्यथित करती है। हम नहीं चाहते कि हमारा राष्ट्र कभी असमृद्धि के कगार पर खड़ा हो। अतः आओ, हमारी ओर कदम भरती हुई असमृद्धि को हम ललकार कर दूर भगा दें। दूर हट जाओ असमृद्धि! हमारे राष्ट्र को घेरने का मनसूबा त्याग दे। हम जानते हैं कि खाँसी, ज्वर, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, भूखापन, नंगापन, कराहट, हाहाकार, अकाल मृत्यु आदि तेरे हथियार हैं, जिनसे तू किसी राष्ट्र की भोलीभाली प्रजा को कष्टापन्न करके निर्वीर्य और विध्वस्त करती है। हम अपने राष्ट्र में गरीबी दूर करने के साधनों का अधिकाधिक आविष्कार एवं प्रचलन करके तेरे सब हथियारों को निकम्मा कर रहे हैं। अतः कदम बढ़ा जा, सदा के लिए विदा हो जा हमारे समुन्नत राष्ट्र से।

असमृद्धि को मन्त्र में 'अराति' कहा गया है। अराति शब्द नञ् पूर्वक दानार्थक रा धातु से कर्ता अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करके बना है, जिसका अर्थ होता है अदानशील, अर्थात् कुछ भी लाभ न पहुँचाने वाली, संस्कृत में अराति का अर्थ शत्रु होता है। अतः असमृद्धि को अराति कहने से उसकी हानिकारकता तथा उसकी शत्रुरूपता प्रकट होती है। हे असमृद्धि! हम जानते हैं कि तू 'नि–मी–वन्ती' अर्थात् निरन्तर हिंसा करने–करानेवाली है। असमृद्धि की स्थिति में राष्ट्रवासी एक–दूसरे की हिंसा करने लगते हैं, गरीब मनुष्य अपनी गरीबी दूर करने के लिए दूसरे की सम्पत्ति हड़पने का प्रयास करता है, इस प्रकार हिंसा भड़क उठती है। असमृद्धि 'नि–तुदन्ती' भी है, अर्थात् वह निरन्तर व्यथा पहुँचाती है।

शेष पृष्ठ संख्या 33 पर

न्याय और दया

लेखकः श्यामबिहारी मिश्र

साधारण जनसमाज में न्याय और दया में बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध समझा जाता है और दया न्याय का एक प्रधान अंग मानी जाती है। इस स्थान पर हम यही विचार करेंगे कि इनमें वास्तव में क्या सम्बन्ध होना चाहिए। राज्य सम्बन्धी विचार से जहां तक हम समझते हैं इन दोनों में कुछ भी सम्बन्ध नहीं, वरन् न्याय के साथ दया का मिलना घोर अन्याय है। वर्तमान काल में न्याय कानून के अनुसार वर्ता जाता है। कानून में कहीं-कहीं त्रुटियां हैं, इसी से कभी-कभी न्याय के बदले अन्याय हो जाया करता है। जैसे आइन में जान बूझकर नर-हत्या करने का दंड वध अथवा जन्म भर के लिये कालापानी भोगना है; परन्तु अनुभव से जाना गया है कि ऐसी हत्या करनेवाले भी कभी-कभी इस दण्ड के पात्र नहीं होते, क्योंकि सब बातों का विचार कर के उनका आचरण उतना निंद्य नहीं कहा जा सकता। ऐसी दशा में सरकार ने न्यायाध्यक्षों को उक्त दंड के सिवा अपराधी को अन्य मुलायम दंड देने का अधिकार नहीं दिया। इससे ऐसे अभियोगों के पूर्ण वृत्तान्त गवर्नमेंट के पास दया दिखाने के लिये भेज दिए जाते हैं। यदि सरकार उचित समझती है तो अपराधी पर दया करती है। फिर या तो उसे बिलकुल ही दंड नहीं देती, या दंड की मात्रा समुचित रीति पर घटा देती है। इसी प्रकार अन्य अपराधों के सम्बन्ध में भी कभी-कभी सरकार के पास रिपोर्ट जाती है, अथवा स्वयं अपराधी ही क्षमा किए जाने के लिये सरकार के पास विनय-पत्र भेजता है। इस प्रकार की दया को दया कहना ही ठीक नहीं। सरकार निम्नलिखित तीन दशाओं में ही अपराधी को क्षमा-प्रदान करती है, अर्थात्-

(1) जब कई राजनैतिक कारणों से अपराधी का दंडित होना सरकार को अभीष्ट न हो।

(2) जब अदालत की इच्छा रहते हुए भी मुलायम दंड देने का अधिकार अदालत को न हो, और सरकार भी अदालत से सहमत हो।

(3) जब सरकार की निगाह में न्यायाध्यक्ष की भूल से किसी को अनुचित कठोर दंड मिलने की आज्ञा हो गई हो।

इन तीनों दशाओं में से किसी में भी दया की झलक तक नहीं। प्रथम में राजनैतिक, न कि दया सम्बन्धी, कारणों से अपराधी दंडित नहीं होता; दूसरी में न्यायाध्यक्ष को पूरा न्याय करने का अधिकार नहीं, सो मानो सरकार उसके आसन पर बैठ जाती है, और तृतीय दशा में सरकार न्यायाधीश की भूल को ठीक कर देती है। किसी अपराधी का दया द्वारा छूटना तभी कहना चाहिए जब उसके छुटकारे का कोई अन्य कारण वर्तमान ही न हो। ऐसी दशा में सरकार अपराधी को कभी क्षमा नहीं करती।

अब यह प्रश्न उठता है कि न्यायाध्यक्ष को किसी अन्य समुचित कारण की अनुपस्थिति में अपराधी पर दया करनी चाहिए या नहीं। इस विषय में सबसे प्रथम तो यही वक्तव्य है कि आइन के अनुसार सिवा सरकार के और किसी को न्याय में दया करने का अधिकार नहीं है, अतः न्यायाध्यक्ष को दया से कोई सरोकार नहीं, और बिना बेईमानी किए वह दया नहीं कर सकता। फिर केवल दया के कारण दंड न दिए जाने के फल बड़े ही भयंकर होते हैं। रूस, इटली तथा बेलजियम देशों और जर्मनी तथा स्विटजरलैंड के कतिय प्रान्तों में किसी को प्राणदंड नहीं दिया जा सकता। फ्रांस और अमेरिका में प्राणदंड की आज्ञा शायद ही कभी होती हो और आज्ञा होने पर भी अपराधी अधिकतर दशाओं में क्षमा कर दिया जाता है। फ्रांस में कालेपानी भेजे हुए लोगों की दशाएँ ऐसी अच्छी समझी जाती हैं कि इस दंड का आनन्द लूटने ही को बहुतों ने जिनकी दशा उस देश में अच्छी न थी, नर-हत्याएँ कर डालीं और अदालत में यही बयान भी कर दिया। एक स्त्री ने अपने सोते हुए पति को गोली से मार डालने के अपराध में केवल पांच साल की सजा पाई। रूस में एक मनुष्य ने दो खून करने के अपराध में केवल यही दंड पाया कि वह आठ साल साइबेरिया में रहे। 1903 ई0 में अमेरिका के शिकागो शहर में 118 खून हुए और लंदन में जो शिकागो से तिगुना है, केवल 20 हत्याएँ हुई। अमेरिका के जार्जिया प्रदेश में 100 हत्यारों में से केवल एक को फांसी होती है, पर इंगलैंड में एक तिहाई हत्यारों के प्राणदंड पा जाने का परता बैठता है। लेखों से ज्ञात हुआ है कि भयंकर बोर युद्ध में जितने अंग्रेज मारे गए, उनके प्रायः आधे मनुष्य यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका में प्रति वर्ष हत्यारों द्वारा प्राण खो बैठते हैं। 1900 ई0 में उक्त देश में 8000 मनुष्य हत्यारों के हाथों से मारे गए, पर केवल 117 हत्यारों को फांसी हुई। इन सब बातों से प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि न्याय के साथ दया जितनी ही मिलाई जाती है, उतना ही अन्याय एवं अत्याचार प्रबल हो उठता है, होना ही चाहिए। अत्याचार तो केवल दंड के भय से रुकता है; जब दंड का भय ही नहीं, जब यह आशा है कि अत्याचार करके किसी न किसी प्रकार दंड से बच जायेंगे, तब अत्याचार क्यों न बढ़े? अतएव अदालत के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि या तो अपराधी को दंड दो, या उस पर दया करके भविष्य में निर्दोष मनुष्यों पर अत्याचार का होना उत्तेजित करो। जिस अपराधी ने किसी निर्दोष मनुष्य को अकारण ही मार डाला, अथवा उस पर कोई अन्य अत्याचार किया, उसके विषय में दया का प्रश्न उठना ही घोर अन्याय और निर्दयता है। दया तो मजलूम (सताए हुए मनुष्य) और उसके कुटुम्बियों पर करनी चाहिए, न कि जालिम (अत्याचारी) पर। प्रतिवादी को पूरा दंड मिलने पर भी यही होता है कि वादी और प्रतिवादी दोनों को दंड मिला, क्योंकि वादी को तो प्रथम ही से प्रतिवादी ने दंडित कर रक्खा है। इस पर भी बेचारे वादी को बिना अपराध दंड मिला और प्रतिवादी को अत्याचार करने पर। इससे प्रतिवादी को पूर्ण दंड मिल जाने पर भी वादी का पूरा बदला नहीं चुकता।

हर मनुष्य को यह नैसर्गिक अधिकार है कि वह अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले से पूरा बदला

ले। पर इसमें भय रहता है कि वह या उसे स्वजन आत्म-स्नेह के कारण अपराधी को उचित से बहुत अधिक दंड दे डालेंगे। अतएव सरकार ने सताए हुए लोगों से यह अधिकार अपने हाथ में ले लिया है। ऐसी दशा में यदि अदालत अपराधी पर दया करके उसे उचित दंड न दे, तो सताए हुए निर्दोषी मनुष्य के साथ बड़ा ही निर्दयता का व्यवहार होगा। इससे स्पष्ट है कि यदि किसी मनुष्य को अपराधी पर दया करने का अधिकार हो सकता है, तो वह वादी है। इससे बिना उसकी स्पष्ट सम्मति के हाकिम को अपराधी पर दया करने का जरा भी अधिकार नहीं। न्यायाध्यक्ष कभी-कभी सर्वप्रिय होने तथा नेक, रहमदिल, और गरीबपरवर कहलाए जाने के लालच से अत्याचारियों पर दया कर बैठते हैं, पर वे नहीं सोचते कि इस मानसिक निर्बलता और क्षुद्र आत्म-स्नेह के कारण वे मुद्दई (वादी) पर कितना घोर अत्याचार कर रहे हैं। "सर्वप्रिय" होना, अथवा "नेक, रहमदिल, गरीबपरवर" कहलाना भी हमारे सुख की वैसी ही सामग्रियां हैं, जैसे दानी होना, उत्तम भोजन करना, बढ़िया सजावट के मकान और सवारी आदि रखना, इत्यादि। इनमें किसी से तो मानसिक सुख होता है और किसी से दैहिक। सो जैसे सुख की अन्य सामग्रियों का मूल्य होता है, वैसे ही "रहमदिल" आदि कहलाने की भी कीमत अवश्य देनी पड़ती है, परन्तु खेद यह है कि ऐसा बहुमूल्य सौदा तो न्यायाध्यक्ष जी ने खरीदा, पर उसकी कीमत उन्होंने स्वयं न देकर बेचारे निरपराधी सताए हुए वादियों से उनकी इच्छा के प्रतिकूल दिलाई। धिक्कार है ऐसी "सार्वप्रियता, नेकी, रहमदिली और गुरवापरवरी" पर। यदि वादी के बदले न्यायाधीश जी पर वही अथवा उससे भी छोटा अत्याचार हुआ होता तो वे अपनी "अगाध दया" को एकदम भूल जाते और अपराधी का रक्त ही चूस लेने को प्रस्तुत होते। परन्तु दूसरे पर अत्याचार होने से उनकी यह सुनने की इच्छा बलवती हो उठती है कि "भाई! अमुक हाकिम बड़ा ही रहमदिल है," इत्यादि। दया करनेवाले हाकिम को हम डाकू से भी बुरा समझते हैं, क्योंकि वह सौदा (नेकनामी आदि) खरीद कर एक बार के सताए हुए निरपराधी वादी को लूटता और उससे अपने सौदे का मूल्य दिलाकर उस पर दूसरा अत्याचार करता है। वादी पर एक अत्याचार तो सताए जाने का हुआ, दूसरा बदला न मिलने का। हमारी समझ में तो यदि कोई ऐसी कल होती जो साक्षी इत्यादि के कथन सुनकर उन पर ध्यान दे उचित निष्कर्ष निकाल कर अपराधी को समुचित दंड दे सकती, तो वह सर्वोत्तम न्यायाधीश होती। जो न्यायाध्यक्ष अपनी मानसिक दुर्बलताओं को छोड़ कर इस कल की जितनी ही बराबरी कर सके, वह उतना ही अच्छा हाकिम होगा। अतएव हमारी समझ में अत्याचार-विवर्द्धिनी दया का न्याय से कुछ भी सम्बन्ध न होना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि अदालत को अपराधी पर अनुचित कठोरता करनी चाहिए, पर उचित दंड न देना भी वैसा ही पाप है जैसा अनुचित दंड दे डालना।

अब तक हमने न्यायालय सम्बन्धी दया और न्याय पर विचार किया है। इससे प्रिय पाठकों को ऐसा भ्रम हो सकता है कि हम दयाहीन न्याय का पक्ष प्रतिपादित करते हैं। यह कदापि ठीक नहीं। सत्पुरुषों ने दंड के विधान में ही दया का पूरा समावेश किया है। सबसे पहला विचार यही है कि मनुष्य

को जहां तक हो सके दंड मिलना ही न चाहिए, क्योंकि दुःख देना समाज का काम नहीं है। फिर भी रोग होने पर वैद्य न चाहते हुए भी रोगी को कटु औषध देता है। ऐसी औषधि देकर रोगी को कष्ट देना वैद्य को अभीष्ट नहीं, किन्तु स्वास्थ्य शुद्धीकरण के लिये वह आवश्यक है। अतः कटु औषध एक आवश्यक दुःख है जिसका होना रोगी की ही भलाई के लिये अनिवार्य है। यही दशा आचार शुद्धीकरण के लिये न्यायालय सम्बन्धी दंड ही है। दंड भी समाज और व्यक्ति दोनों के लिये कटु औषध है। दंड कभी केवल समाज शुद्धीकरणार्थ होता है और कभी समाज तथा व्यक्ति दोनों की शुद्धि इसके द्वारा होती है।

यह विषय अत्यन्त सुगम नहीं है सो हम एकाध उदाहरण के साथ इसका वर्णन उचित समझते हैं। हिन्दू धर्म शास्त्र में लिखा है कि जब अपराधी राजदंड पा जाता है, तब उस दोष के लिये ईश्वर के यहां वह दंडित नहीं होता, अर्थात् राजदंड मरणान्तर सम्बन्धी लगनेवाली कालिमा को धो देता है। यह धार्मिक विचार अनुमानसिद्ध भी समझ पड़ता है। यदि यह मान लिया जाय तो राजदंड सदैव व्यक्ति और समाज दोनों की भलाई के लिये सिद्ध होगा। फिर भी आचार शास्त्र के कोई ग्रंथ धर्म, पुनर्जन्म, ईश्वर आदि के विचारों को मान कर नहीं चलते, वरन् सीधे तार्किक सिद्धान्तों पर ही अवलंबित रहते हैं। इसलिये साधारण विचारों से प्राणदंड तथा जीवन पर्यन्त की कैदवाले दंड केवल समाज शुद्धीकरण के लिये हैं, किन्तु शेष सब दंड समाज और व्यक्ति दोनों के हितार्थ दिए जाते हैं।

पहले समय में जब तक सामाजिक विचार उन्नत नहीं हुए थे, लोग नाक के बदले नाक और कान के बदले कान काटने का दंड उचित समझते थे। धीरे-धीरे जब मनुष्य जाति ने मानसिक उन्नति विशेषता से की, तब ऐसे कठोर दंड दयाहीन एवं अनुचित समझे जाने लगे। लोगों ने समझा कि अपराधी ने अवश्य दुष्टता से वादी को कष्ट दिया है, किन्तु समाज तो दुष्ट नहीं हो सकता कि कान काटने के बदले कान ही काट लेवे। इसलिये उतना ही दंड देना योग्य समझा गया कि जो समाज और व्यक्ति शुद्धीकरण के लिये काफी हो और जिसके भय से भविष्य के अपराधी अपराध करने से दबे रहें। ऐसे विचार पहले तो दया के कारण उठे, किन्तु पीछे से सभ्यता के अंग होकर न्याय सम्बन्धी विचारों में मिल गए, यहां तक कि समय पर इनका दया से कोई सम्बन्ध न रहा और ये शुद्ध न्याय के अंग हो गए जैसा कि तार्किक शुद्धता से इन्हें सदैव होना चाहिए था। पीछे से अधिक उन्नति होने से जन्मकैद की सीमा केवल बीस वर्ष की कैद रह गई, अर्थात् जन्मकैदी यदि बीस वर्ष कारागार भोग चुके, तो वह मुक्त कर दिया जाता है। प्राणदंड के विषय में भी मतभेद उठा। कुछ देशों में यह सिद्ध हुआ कि प्राणदंड किसी दशा में न देना चाहिए। वहां सबसे कठोर दंड जन्मकैद ही है। अन्य देशों में अब तक प्राणदंड चलता है।

–(शेष अगले अंक में)

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

विरजानन्द प्रकाश

लेखकः भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण

श्री प्रज्ञाचक्षुजी जयपुराधीश द्वारा सूचित समय पर स्वशिष्यों सहित उनके पट–मन्दिर पर पहुंचे। महाराज ने आते हुए दण्डीजी का स–सदस्य आगे बढ़कर स्वागत किया। उनको अपने आसन पर बैठाया और स्वयं आसन पर समासीन होकर अपना परिचय दिया। विद्यार्थियों ने यज्ञोपवीत सहित श्रीफल व मथुरा के पेड़े भेंट करते हुए उत्तम स्वर से आशीर्वादात्मक मन्त्र पढ़े और महाराज ने भेंट स्वीकृत कर कृतार्थता प्रकट की। उस समय जयपुर नरेश के समीप रीवांवाले पुरन्दर कवि, बूंदी के पण्डित केदारनाथ शास्त्री एवं तीरभुक्ति के पं0 राजविलोचन ओझा नैयायिक विद्यमान थे। इस प्रकार पण्डित–त्रय–परिवृत्त जयपुराधीश्वर रामसिंह, तारागण समावृत रजनीश्वर के समान सुशोभित थे। परपतिरत्न रामसिंह को कर्त्तव्य–पालनार्थ प्रेरित करते हुए परिव्राजकाचार्य विरजानन्द बोले–

"हे पर–पंचानन, आप सार्वभौम वैयाकरण महासभा की आयोजना करें। आपके पूर्वपुरुष ने अश्वमेध यज्ञ किया था। अतः आप ही प्रस्तावित सभा करने के अधिकारी हैं। समस्त भारतवर्ष के पण्डितों को निमन्त्रित कीजिये। उनके उपस्थित होने पर आपके समक्ष सिद्ध कर दूंगा कि सिद्धान्त–कौमुद्यादि अनार्ष–ग्रन्थ सर्वथा अपाठय हैं और अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्षग्रन्थ मात्र अध्येतव्य हैं। इन्हीं के अध्ययन व अध्यापन से राजा–प्रजा दोनों का कल्याण होगा। हम दो घण्टे में सबको निश्चय करा देंगे। जो राजा आर्ष ग्रन्थ पठन–पाठन प्रवृत्त करा देगा, वह सार्वभौम महाराज होगा। आपको विजयपत्र दिलवा देंगे। आपका तीन लाख रुपया व्यय होगा पर जगत् में आपकी अक्षयकीर्ति रहेगी।"

जयपुरपति ने कहा–"सार्वभौम सभा रचाऊंगा, पर इसकी व्यवस्था कुछ समय पश्चात् ही हो सकेगी। अभी समय अनुकूल नहीं है। व्यय सारा मैं वहन करूंगा।"

दीवान शिवदीनसिंह जी ने प्रज्ञाचक्षुजी से जयपुर चलने की प्रार्थना की, तो वे बोले–"यदि महाराज कहें तो हम चलेंगे।" पर महाराज चुप रहे।

विरजानन्द ने चलते समय कहा–"इस सभा के करने से महती कीर्ति होगी। अन्यथा कुत्ते, गधे जैसी मृत्यु होगी। पीछे कोई स्मरण न करेगा।"

महाराज ने दौ सौ मुद्रा, दो अशर्फियें और एक दुशाला भेंट किया, पर दण्डीजीने स्वीकार नहीं किया। कहा–"हम भेंट लेने नहीं आए हैं।" जयपुराधीश ने ये वस्तुयें मथुरा में दण्डीजी के पास पहुंचा दी थीं।

स्वामीजी ने मथुरा में आकर सार्वभौम–सभा का एक गद्य–पद्यमय विवरण लिखा था। छः मास तक जयपुर–पति की सूचना की प्रतीक्षा की। तदनन्तर दण्डीजी ने एक पत्र भी भेजा, पर

जयपुराधीश के सम्मतिदाताओं ने इस सभा को महती अपकीर्ति का कारण बताकर उन्हें निरुत्साहित कर दिया। भ्रान्त मन्त्रियों के मति-कर्दम (बुद्धिरूपी कीचड़) में फंसा क्षत्रिय एक सच्चे निःस्पृह परोपकारी ब्राह्मण से की गई अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह न कर सका। दण्डीजी को जयपुरपति का पूरा विश्वास था, अतः उनकी महती निराशा और व्यथा का हममें से कोई क्या अनुमान कर सकेगा।

इसके उपरान्त देशहित-समुत्सुक दण्डीजी ने सेंधिया (ग्वालियर नरेश) तथा काश्मीराधिपति को भी रजिस्टर्ड पत्र भेजे। स्वदेशीय राजगण से निराश होने पर श्री दण्डीजी ने विक्टोरिया को भी पत्र भेजा। पर भारत के बुरे दिन समाप्त न हुए थे। उस व्यथितहृदय साधु की टेर सर्वत्र अरण्यरोदनमात्र सिद्ध हुई।

अनन्ताचार्य तथा वासुदेव स्वामी से शास्त्रार्थ (संवत् 1916)

वृन्दावन के रंगाचार्य के तीन गुरुजन (श्रीनिवासाचार्य, वाचस्पति मिश्र, तथा कृष्ण शास्त्री) की चर्चा पहले हो चुकी है। इनके एक अन्य गुरु प्रतिवादि-भयंकर अनन्ताचार्य भी थे। इन्हीं के साथ ये कांची (कंजीवरम् दक्षिण) से उत्तर में आये थे। इनके साथ दण्डीजी का शास्त्रार्थ मुरसान में, सं0 1917 में तीन मास तक (प्रायः भाद्रपद कृष्णपक्ष से कार्तिक कृष्णपक्ष तक) हुआ। दण्डीजी रात्रि मथुरा में ही बिताते थे। अर्थात् नित्य मुरसान जाते व लौट आते थे। तीन मास पश्चात् अनन्ताचार्य ने 'अब पत्र-व्यवहार द्वारा शास्त्रार्थ करूंगा' कहकर अपना पीछा छुड़ाया।

इसी सं0 1917 में कार्तिक शुक्ला के पश्चात् विरजानन्द का वृन्दावन में हिम्मत बहादुर की कचहरी में वासुदेव स्वामी से शास्त्रार्थ हुआ। इस स्थान में अब शाहजी का मन्दिर बन गया है। इस शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती भी उपस्थित थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का अध्ययन (सं0 1917-1919)

टंकारा (मोरवी राज्य) के वैभटदार श्री कर्शनलाल जी तिवारी के घर को, सं0 1881 फाल्गुन वदि 10 शनि, मूल नक्षत्र में (12-2-1825) एक भव्य आत्मा ने आलोकित किया! इनका नाम मूलशंकर रक्खा गया। दूसरा प्यार का नाम दयालजी था! इनके मातृचरण का नाम यशोदाबाई था। मूलशंकर के पश्चात् एक बहिन, ततः एक भाई, एक बहिन, तदुपरान्त एक भाई का जन्म हुआ। मूलशंकर का पांचवें वर्ष (सं0 1886) में उपनयन हुआ।

इनके पिता निष्ठावान शैव थे। अतः दशम वर्ष (1892 के अन्त) में मूलजी से पार्थिव पूजा आरम्भ करा दी थी। चौदहवें वर्ष के प्रारम्भ (सं0 1884 शिवरात्रि, गुरुवार 22-2-1838) में इन्होंने शिवरात्रि का व्रत रक्खा। जागरण टंकारा के बाहर इनके पिता के बनवाये हुए कुबेरनाथ के मन्दिर में हुआ था। इस जागरण में चूहों को शिव-पिण्डी पर चढ़कर चावल खाते देख इनकी मूर्तिपूजा से आस्था

उठ गई।

जब ये 16 वर्ष के थे (सं0 1897) तो इनसे जो दो वर्ष छोटी बहिन थी, उसकी विशूचिका से मृत्यु हो गई। मृत्यु का भयंकर दृश्य प्रथम बार देख, इनका मन सांसारिक जीवन से एकपदे हट गया। एक बार पड़ोसी खेतवाले ने इनके खेत पर अधिकार कर लिया। मूलशंकर अकेले ही तलवार लेकर जा पहुंचे। सब लोग भाग गए (सम्भवतः सं0 1899)। भगिनी की मृत्यु के 3 वर्ष पश्चात् (सं0 1901) में इनके वत्सल चाचा की मृत्यु ने इनके वैराग्य को अतिदृढ़ कर दिया। इनका विवाह होने को था कि गृहस्थ-बन्धन से बचने के लिये, कुछ दिन पूर्व सं0 1903 के प्रारम्भ में ये घर से चल दिये और योगियों को ढूंढ़ते फिरे। सायला में नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन **'शुद्ध चैतन्य'** नाम पाया। कार्तिक स्नान के असवर पर सिद्धपुर पहुंचे। वहां इनके पिता ने इन्हें जा पकड़ा (कार्तिक पूर्णिमा भौम 3-11-1846) पर ये चौथी रात को फिर भाग गए। अनेक स्थानों पर विद्याग्रहण व राजयोग सीखते हुए, सं0 1905 की ग्रीष्म ऋतु में चाणोदकन्यालीमें श्री परमानन्द सरस्वती से संन्यास लिया और दयानन्द सरस्वती नाम पाया। छः मास तक दण्ड धारण कर विसर्जन कर दिया। ये स्थान-स्थान पर जाकर विद्याग्रहण व योग-साधनापरायण रहे। सं0 1910 के आरम्भ में चाणोदकन्याली में दो अच्छे योगी ज्वालानन्द पुरी तथा शिवानन्द गिरि मिले। इन्होंने स्वामी दयानन्द की परीक्षा कर अधिकारी जान उन्हें योग की उत्तम शिक्षा दी। इसके उपरान्त आबू पर्वत पर कुछ और भी योग तत्वों को प्राप्त करते हुए, ये सं0 1911 के अन्त में हरिद्वार के कुम्भ मेले पर पहुंचे। सं0 1912 में योगियों की खोज में केदारनाथ, बदरीनाथ आदि की यात्रा की। इस यात्रा में जोशी मठ के शंकराचार्य ने इन्हें हरिद्वार पर्वत-यात्रा से लौटकर सं0 1912 में लगभग 108 वर्ष के अतिवृद्ध स्वामी पूर्णानन्दजी के पास पहुंचे। वे अतिवृद्ध हो मौनी बन गये थे, पढ़ाते न थे। उन्होंने लिखकर दयानन्द को विरजानन्दजी के पास मथुरा जाने की प्रेरणा की।

गंगा-तट पर भ्रमण करते हुए, देशभक्त दयानन्द को अंग्रेजों के निकालने की बड़ी तैयारियों का पता चल गया था। इस समय को विद्याभ्यास के अनुपयुक्त समझ वे देशाटन, योगाभ्यासादि में लगे रहे। दयानन्द शस्त्रास्त्र विद्या के उत्तम ज्ञाता थे। पर आदर्श संन्यासी थे। हथियार पकड़ना उनका काम न था। तथापि उन्होंने कर्तव्य प्रेरक साधु के रूप में नानाजी (धूं धूं पन्त) से सहयोग किया प्रतीत होता है।

दयानन्द सं0 1917, कार्तिक शुक्ला 2 बुधवार (14-11-1860) को विरजानन्द के शिष्य बने। उन्होंने इनके व्याकरण व वेदान्तदर्शन को अध्ययन किया। व्याकरण के विशेष सूत्रों पर दार्शनिक चर्चायें काशी के कौमुदी के अध्यापन में भी आती हैं। इन चर्चाओं का भी विस्तार-संकोच गुरु-शिष्य की योग्यतानुसार हो सकता है। जब विरजानन्द जैसे दार्शनिक गुरु थे, और दयानन्द जैसे दार्शनिक शिष्य थे, तो दर्शन के प्रायः सभी मार्मिक स्थलों की आलोचना व्याकरण व वेदान्त के अध्ययन में ही आ गई होंगी। दयानन्द के बुद्धि-विकास में विरजानन्द का विशेष भाग था। विरजानन्द दयानन्द का संयोग मणि-कांचन था। दोनों ने परस्पर संयोग से अपने जीवनों को सफल माना।

विद्या समाप्ति पर, मुमुक्षुवर्य, अकिंचन दयानन्द सरस्वती गुरुदक्षिणानियमनिर्वाहार्थ लौंगें गुरु–दक्षिणा के रूप में लेकर उपस्थित हुए। विरजानन्द स्व–छात्रों से गुरुदक्षिणा के रूप में कुछ न लेते थे। वे बोले–**"दयानन्द, तुम्हारी यह भक्तिपूर्ण भेंट स्वीकार है, रख दो। पर एतावन्मात्र से गुरु–दक्षिणा न होगी। गुरु–दक्षिणा में मुझे तुमसे कुछ और मांगना है, और वह तुम्हारे पास है भी। क्या तुम मेरी मांगी वस्तु मुझे दे सकोगे?"**

दयानन्द बोले–**"मेरा रोम–रोम आपके आदेशार्थ समर्पित है। आप निःसंकोच आदेश करिये।"**

देश–दशा–चिन्तित विरजानन्द ने कहा–**"दयानन्द! देश में घोर अज्ञान फैला हुआ है। स्वार्थी लोग जनता को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। तुम इस व्यापक अन्धकार के निवारणार्थ सर्वात्मना प्रयत्न करो।"**

दयानन्द ने सहर्ष "तथास्तु" कहकर गुरुनिर्देश को शिरोधार्य किया और सम्पूर्ण जीवन देशोद्धार मे होम किया। मोक्ष–प्राप्ति के स्थान में देशोद्धार मुख्य लक्ष्य बन गया।

अन्तिम वर्ष–पंचक
(सं0 1920–1924)

सं0 1920 में श्री दण्डीजी का बम्बई के प्रसिद्ध गट्टूलाल शतावधानी से गोकुल में शास्त्रार्थ हुआ। श्री गट्टूलालजी भी नेत्र विरहित थे और प्रसिद्ध पण्डित थे। पण्डितवर्य गोपाललालजी मध्यस्थ थे। **'एधितव्यम्'** समस्या पर शतावधानी महोदय ने अपनी रचना सुनाई। दण्डीजी ने उसकी आलोचना की। शतावधानीजी दोष–परिहार में असमर्थ रहे।

गयाप्रसाद व दामोदरदत्त, दो छात्र दण्डीजी के साथ थे। विरजानन्द ने अपनी रचना दामोदरदत्त को लिखवाई और सुनाकर उसकी व्याख्या की। गट्टूलाल कोई आक्षेप न कर सके।

दण्डीजी की विद्वत्ता पर मुग्ध हो मध्यस्थ महोदय ने कहा–**'मथुरा गोकुल से दूर है, अन्यथा मैं आपके नित्य दर्शन करता और आपसे अध्ययन करता।'**

पं0 उदयप्रकाश व्याकरण में मथुरा के कौमुदी–अध्यापकों में सर्वश्रेष्ठ थे। समग्र टीकाग्रन्थ उनकी जिह्वा पर नाचते थे। उनसे दण्डीजी का कौमुदी आदि के खण्डन का अखण्ड पाठ सहा न गया। सं0 1920 या 21 में उनका दण्डीजी से शास्त्रार्थ ठहरा। यह निश्चय हुआ कि **'जो हारे वह दूसरे का शिष्य बन उससे पढ़े और उसके सिद्धान्त का अनुयायी बने।'** विरजानन्द से परास्त हो उदयप्रकाश ने दण्डीजी से अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़े और यावज्जीवन उनका प्रचार किया।

पण्डित उदयप्रकाश के अन्तरंग सखा पण्डित मणिराम व्याकरण, काव्य तथा तर्कशास्त्र के महान विद्वान थे। इनका फारसी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। ये भरतपुराधीश महाराज जसवन्तसिंहजी को पढ़ाते थे। भरतपुर में कोई विद्वान् इनसे बात–चीत में समर्थ न था। अतः वे वाग्विलासार्थ अपने परम सखा पण्डित उदयप्रकाशजी के पास मास दो मास में आया करते थे और तीन–चार दिवस वाग्विलास चलता रहता था।

–(शेष अगले अंक में)

भाग्य और उद्यम

लेखकः बाबू सूरजभान

भाग्य और उपाय अर्थात् तकदीर और तदवीर के विषय में भी लोग बहुत चक्कर में पड़े हुए हैं। एक कहता है कि पूर्व जन्म में हमने जो कुछ भले बुरे कर्म किये हैं उन्हीं के अनुसार हमें सुख दुःख मिलता है। दूसरा कहता है कि पहले जन्म का तो हमारा कुछ कर्म नहीं था, अर्थात् हमारा पहले कोई जन्म ही नहीं था, हमको परमेश्वर ने इसी जन्म में नवीन जीव बना दिया है, इस कारण वह ही जिसको जिस अवस्था में रखना चाहता है, रखता है; उसे जो मंजूर होता है वही करता है–उसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल–डुल सकता है। परन्तु अब हम जो कर्म करेंगे उसका फल हमको आगामी जन्म में अवश्य मिलेगा और उसी के अनुसार हम स्वर्ग या नरक में डाले जावेंगे और फिर अनन्त काल तक वहीं पड़े रहेंगे। अर्थात् इस एक जन्म के फल भुगतने के लिए हमें अनन्त काल तक एक अवस्था में पड़ा रहना होगा। तीसरा कहता है कि जैसा हमारा पूर्व जन्म का कर्म होता है और जो कुछ कर्म हम इस जन्म में करते हैं, उन दोनों जन्मों के कर्मानुसार हमें सुख दुःख मिलता है। उदाहरणार्थ–यदि हमने कोई ऐसा भोजन कर लिया हो जिसके कारण हमारे पेट में दर्द होने लगता तथा कुपच होकर अगला पिछला खाया पिया भी सब निकल जाता और हम बहुत कमजोर हो जाते। परन्तु दर्द होने के पहले यदि हमने ऐसा चूर्ण खा लिया हो, जो उस भोजन को अच्छी तरह पचा दे तो हमको दर्द भी नहीं होगा और वह भोजन हमारी ताकत को भी बढ़ावेगा। इस कारण हमको अपने पहले कर्मों पर ही सब्र करके नहीं बैठे रहना चाहिए, बल्कि इस जन्म में भी तदवीर करते रहना चाहिए।

इसी तरह कोई चौथा कहता है कि पिछले कर्मों का भी फल मिलता है और वर्तमान समय के कर्मों का भी फल मिलता है और वर्तमान समय के कर्मों का भी, अर्थात् तकदीर और तदवीर दोनों काम आती हैं। परन्तु कुछ आकस्मिक घटनायें ऐसी भी हो जाती हैं कि जिनका तदवीर और तकदीर दोनों से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता है। कारण कि संसार का सारा चक्र हमारे कर्मोंके अधीन नहीं हो सकता है और अधीन हो भी तो अनेक जीवों के कर्मों के अधीन कैसे हो सकता है? संसार तो अपने स्वभाव के ही अनुसार चल रहा है–वह किसी जीव के कर्मों के अधीन नहीं है। अर्थात् हवा, पानी, सूर्य, चन्द्र आदि प्रकृति की सभी वस्तुयें अपने–अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करती हैं और उनसे जो परिणाम निकलते हैं वे सभी मनुष्यों को भुगतने पड़ते हैं। यही आकस्मिक घटनायें हैं जिनसे कोई नहीं बच सकता। इस पर दूसरा कहता है कि मनुष्य अपनी बुद्धि से इनसे बचने का भी उपाय कर सकता है और करता रहता है। बेशक, वर्षा किसी मनुष्य के कर्मों की अधीनता के कारण नहीं होती है, वह अपने स्वभाव के अनुसार

जब उसके कारण जुट जाते हैं, तभी हुआ करती है, परन्तु मनुष्य मकान बनाकर या छतरी लगाकर अपने को भीगने से बचा सकता है, और वर्षा के पानी को किसी तालाब में इकट्ठा करके और नहर आदि के द्वारा इच्छित स्थान पर ले जाकर उससे अपने अनेक कार्य भी बना सकता है।

इस प्रकार तकदीर और तदवीर के विषय में अनेक प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित हो रहे हैं; परन्तु हम इन सिद्धान्तों पर कुछ भी बहस न करके स्थूल रूप से यही कहना चाहते हैं कि मनुष्य चाहे जिस सिद्धान्त को मानता हो, परन्तु उसे उद्यम अवश्य करना चाहिए और ईश्वर की मर्जी, पूर्वजन्म के कर्म, या आकस्मिक घटनाओं के भरोसे उसे कदापि नहीं बैठना चाहिए। अर्थात् यह ख्याल करके कि जो कुछ हमारे भाग्य में बंधा होगा, या जो होनहार होगा वह अवश्य ही होगा, हमको अपना कर्तव्य कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि यदि यही सिद्धान्त सच्चा हो कि जो होनहार होगा वही होगा, हमारा पुरुषार्थ कुछ भी काम न आयेगा, तो भी पुरुषार्थ करते रहने से कुछ हानि नहीं होती है। क्योंकि हमारे पुरुषार्थ या उद्यम से वह होनहार हमसे नाराज होकर अपनी चाल तो बदल नहीं देगी, वह तो ज्यों की त्यों ही रहेगी। हाँ, यदि भाग्य या होनहार वास्तव में कोई वस्तु नहीं है, बल्कि जो कुछ होता है वह पुरुषार्थ से होता है या इस समय का पुरुषार्थ हमारे भाग्य या होनहार को बदल सकता है और आकस्मिक घटनाओं से बचा सकता है, तो भाग्य या होनहार के भरोसे पर बैठे रहने से हमें अवश्य ही नुकसान उठाना पड़ेगा और हमारे सारे कार्य बिगड़ जावेंगे। इसलिए चाहे कोई भी सिद्धान्त सच्चा हो, परन्तु हमें भाग्य के भरोसे न बैठकर उद्यम और पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से हमें किसी तरह की हानि नहीं उठानी पड़ेगी और हर हालत में लाभ होगा।

इसके सिवा यह भी देखा जाता है कि उद्यम और पुरुषार्थ को न तो कोई छोड़ता है और न छोड़ सकता है। बात सिर्फ इतनी ही है कि जिन कार्यों से मनुष्य को अधिक प्रीति होती है उनके असम्भव होने पर भी, अनेक प्रकार की जोखिमों में पड़कर भी, वह उद्योग करता है और जिन कार्यों से उसे कम प्रीति होती है उनको वह भाग्य या होनहार के भरोसे पर छोड़ देता है। जैसे भूख लगने पर अपना पेट भरने के लिए सभी लोग उद्यम करना जरूरी समझते हैं, भाग्य के भरोसे बैठे रहना कभी पसन्द नहीं करते हैं। इस काम को वे दो चार दिन के लिए भी भाग्य पर नहीं छोड़ते हैं, अर्थात् दो चार दिन के लिए भी इस बात को आजमाकर नहीं देखते हैं कि पेट भरना होगा। तो भर जायगा, हम क्यों कष्ट उठावें और क्यों हाथ मुंह चलावें। कहने का मतलब यह है कि जरूरी कामों को कोई भाग्य पर नहीं छोड़ता है, परन्तु जिन कामों के किये बिना अपना गुजारा चल जाता है, या आलस्य-प्रमाद या विषय-भोगों में फंसे रहने के कारण जिन कामों के करने में लापरवाही हो जाती है, उन्हीं को भाग्य या होनहार पर छोड़ दिया जाता है। देखो, अपने प्राणप्रिय पुत्र के बीमार हो जाने पर लोग उचित अनुचित सब प्रकार के उपाय करने लगते हैं। जिन धर्मों को वे महापापजनक और घोर नरक में डुबाने वाला समझते हैं या जिन लोगों को महा अधर्मी और पापरूप समझते हैं, उनके देवी देवताओं तक को पूजने लगते हैं, अनपढ़ गमारों के

आगे सिर झुकाने लगते हैं और ऐसे अनेक टोटके करने लगते हैं जिनको वे बिलकुल झूठ और भ्रमपूर्ण बतलाया करते हैं। इस अवसर पर वे भाग्य या होनहार को बिलकुल ही भूल जाते हैं; और रात दिन दौड़ने फिरने और उपाय पर उपाय करने के सिवाय उन्हें कुछ भी नहीं सूझता है। परन्तु बेटी के बीमार होने पर वे उद्यम, उपाय या पुरुषार्थ का बिलकुल निषेध करने लगते हैं और एकमात्र भाग्य या होनहार के भरोसे पर बैठकर कहने लगते हैं कि इसकी जिन्दगी होगी और भगवान को बचानी होगी तो बच जायगी, नहीं तो उपाय करने से क्या होता है? क्योंकि जो होनहार है वह होकर ही रहती है। किसी के टाले कैसे टल सकती है? यदि उपाय करने से कुछ हो सकता, मौत टाली जा सकती, तो सेठ साहूकार और राजा महाराजा कभी न मरते। गरज कि जिन कामों को लोग बहुत जरूरी नहीं समझते हैं उन्हीं के भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं।

हमारी समझ में तो इस भाग्य या होनहार का बहाना बनाने का ख्याल आना भी हानिकारक है, क्योंकि जिस मनुष्य को इस भाग्य या होनहार का जरा भी खयाल होता है उसका आलस्य-प्रमाद या उसकी विषय-वासनायें उसे अपनी ओर खींच लेती हैं और उसके जरूरी कामों को भी गैर जरूरी बना देती हैं। इस तरह वह अपने जरूरी से जरूरी कामों में भी लापरवाही करने लगता है और उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़ने लगता है। यदि किसी विद्यार्थी का चित्त खेल तमाशों में लगा रहता हो और परीक्षा देने की फिकर भी उसके सिर पर सवार रहती हो, तो ऐसी हालत में भाग्य या होनहार का जरा सा भी ख्याल उसके हृदय में बारम्बार यह कल्पना उठाने लगेगा कि परीक्षा में पास होना यदि मेरे भाग्य में लिखा होगा तब तो मैं पास हो ही जाऊँगा, फिर खेल तमाशों को क्यों छोड़ूं और क्यों अपने शौक को पूरा न करूं? इसी तरह के विचारों से बहुत से विद्यार्थी फिसल जाते हैं और अपना पाठ याद करने की अपेक्षा खेल तमाशों को जरूरी समझने लगते हैं। इसी प्रकार और भी अनेक जरूरी कामों के लिए यह भाग्य का खयाल उद्यम और पुरुषार्थ करने से चित्त को हटाता है और मनुष्य को आलस्य, प्रमाद और विषय-वासनाओं में फंसा देता है। भारतवर्ष के पुराणादि धर्मग्रन्थों में जबसे भाग्य के गीत गाये गये हैं तभी से उसकी अवनतिका प्रारम्भ हुआ है। जो भारत किसी समय अनेक प्रकार की विद्याओं और कलाओं में सबका शिरोमणि बना हुआ था वही आज बिलकुल विद्याविहीन और उत्साहरहित होकर जरा जरासी चीजों के लिए दूसरों का मुंह ताक रहा है।

इसलिए वास्तव में भाग्य या होनहार कोई वस्तु हो या न हो, परन्तु मनुष्य को यही उचित है कि वह इसका खयाल भी दिल में न आने दें और यही हौसला रक्खें कि जो कुछ होगा, हमारे ही उद्योग से होगा अर्थात् यदि हमने पिछले जन्म में खोटे कर्म भी किये होंगे और संसार चक्र की भी कोई चाल हमारे विरुद्ध आकर खड़ी होगी तो भी हम अपने इस जन्म के उद्योग से उन पर विजय पा सकेंगे, उनको उलटकर सुख-सम्पत्ति प्राप्त कर सकेंगे, कम से कम उनके खोटे फलों को हलका तो अवश्य कर डालेंगे।

सच्ची और झूठी सफलता

लेखक: पं0 माधवराव

सफलता के विषय में कुछ लिखने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि सफलता किसे कहते हैं। बहुत लोग सफलता का यह अर्थ करते हैं कि उनकी कार्य या प्रयत्न समाप्त होने पर इच्छित फल मिल जाय। परन्तु सफलता का इतना ही अर्थ नहीं है। कोई-कोई मनुष्य अपना कार्य पूरा करने पर जब अपने विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति तथा प्राप्ति नहीं कर सकते। जब उन्हें इच्छित फल नहीं मिलता-तब वे अपने को असफल मान लेते हैं। परन्तु सच बात ऐसी नहीं है। संसार में ऐसे बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं जिन्हें हम असफलीभूत अथवा "अकृतकार्य सफलता" कह सकते हैं। फिर सफलता है क्या? वह भी एक साधन या उपाय ही है। वह अन्तिम ध्येय की सर्वोच्च सीढ़ी है, परतु वह स्वयं अन्तिम ध्येय नहीं है। ऐहिक सुख ऐसे होते हैं जो उचित रीति से प्रयत्न करने पर अवश्य मिल जाया करते हैं। यदि दुर्भाग्यवश किसी कारण से न भी मिलें तो इसके लिए किसी कार्यशील सज्जन का जीवन निष्फल और निरर्थक कभी नहीं माना जा सकता। एक विद्वान् अंग्रेज कवि कहता है कि-

If what shone afar so grand,
Torn to nothing in tey hand,
On again, the virtue lies,
In the struggle, not the prize.

R. M. Milnes.

अर्थात् मनुष्य के सद्गुणों का दर्पण उसके कार्यों का दृश्यफल नहीं है, वरन् उसके सद्गुणों का सच्चा दर्पण उसकी अदम्य उत्साहपूर्ण कार्य-शक्ति ही है। क्योंकि स्तुति करने योग्य तो वही मनुष्य हो सकता है जो कंटीले वृक्ष पर स्वयं चढ़कर फल तोड़ सके, नहीं तो बांस अथवा किसी यन्त्र के द्वारा फल तोड़नेवाले के साधारण मनुष्य इस संसार में बहुत से पाये जाते हैं। राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द, महात्मा तिलक, महात्मा गांधी आदि के नाम प्रसिद्ध क्यों हैं? इसलिए नहीं कि इन लोगों ने अपने जीवन में कोई नया राज्य स्थापित किया हो, किन्तु केवल इसीलिए कि वे अपने निश्चित उद्देश्य के अनुसार कंटक-मय पथ में चलते हुए कभी भी विचलित नहीं हुए। बस, जो मनुष्य इस तत्व का आजन्म पालन करेगा उसी का जीवन सफल है। अतएव विचारशील पुरुषों ने कहा है, कि दुर्दमनीय धैर्य-युक्त कार्य-शीलता के अन्तिम स्वरूप-चाहे वह कैसा भी हो-का ही नाम सफलता है।

परन्तु यदि हमारा उद्देश्य ही दोषपूर्ण हो और अन्त में हमें किसी दुःखमय तथा अनिष्टकारक परिणाम का सामना करना पड़े तो इसके दोष के भागी भी हमी हैं। ऐसी दशा में हमारा जीवन सफल

नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा होता तो शराब पीने से मृत्यु होने पर शराबी मनुष्य का भी जीवन सफल कहा जा सकता। किसी उद्देश्य को स्थिर करने और कार्य का आरम्भ करने के पहले हमें यह देख लेना उचित है कि वह उद्देश्य अच्छा है या बुरा। इसके लिए एक अंग्रेज लेखक हमें यह उपदेश देता है–

See first that the design is wise and just,
That aseertained, pursue it resolutely.
Do not for one repulse forego the purpose,
That you resolved to effect.

अर्थात् किसी काम को करने के पहले यह विचार कर लेना आवश्यक है कि वह काम किसी तरह से हानिकारक तो नहीं है। इसके बाद जब यह मालूम हो जाय कि वह कार्य न्यायसंगत है, तब उसको पूरा करने के लिए जी तोड़ परिश्रम करो, फिर चाहे कितनी और कैसी भी बाधायें आ जावें, उस कार्य को अधूरा मत छोड़ो। कार्य करते समय मनुष्य को इस बात की तनिक भी परवाह न करनी चाहिए, कि उसका फल अमुक ही प्रकार का हो, उसका ध्यान केवल इसी बात पर रहना चाहिए कि वह उस कार्य को उत्तम रीति से एक मनुष्य के समान कर रहा है या नहीं। प्राकृतिक नियमों के अनुसार अथवा ईश्वर की योजना के अनुसार हमें केवल कार्य करने का अधिकार और शक्ति है। हमें यह अधिकार नहीं दिया गया है कि हम अपने कर्म के फलों को अपनी इच्छा के अनुरूप बनालें। इसीलिए भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान् का उपदेश है–

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः मा ते संगोऽसत्वकर्मणि।।

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने इच्छानुसार कर्म–फल प्राप्त कर सकता तो फिर ऐसे मनुष्य संसार में देखने को भी न मिलते जो करोड़पति होकर भी अन्त तक पश्चात्ताप में लिप्त रहें, अथवा यह कहिए कि प्रत्येक भिखारी रईस हो जाता। सारांश यह है कि सफलता के यथार्थ स्वरूप पर ध्यान देकर ही प्रत्येक मनुष्य को इस जीवन–संग्राम में अपना–अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए।

बहुत से मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपने जीवन की सफलता अथवा निष्फलता की कसौटी उने प्रति जनसाधारण की राय को मानते हैं। यदि लोग उन्हें अच्छा कहें तो वे अपने जीवन को सार्थक समझते हैं और बुरा कहें तो निरर्थक कहने लगते हैं। परन्तु यह बड़ी भारी भूल है। ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को प्रिय और पूज्य मालूम हो। देखिए, स्वयं श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण जैसे महान पुरुष भी अपने जीवनकाल में सब लोगों को एक ही से प्रिय और पूज्य न थे। उनकी भी निन्दा करने वाले और शत्रु थे ही। ऐसी अवस्था में आश्चर्य नहीं कि किसी मनुष्य के तत्वपूर्ण विचार भी कुछ कम समझ मनुष्यों को अप्रिय मालूम होने लगें। इसलिए लोगों की टीका टिप्पणी की विशेष परवाह न करनी चाहिए। उचित उपाय तो यही है कि यदि हमें सचमुच सुखी और कृतकार्य बनना है, तो दूसरों के

अन्याय-संगत और विरोधी विचारों का उल्लंघन करने में तनिक भी संकोच न करना चाहिए। जो मनुष्य सभी लोगों को प्रसन्न करने के प्रयत्न में लगा रहेगा, उसकी वही दशा होगी जैसी धोबी के कुत्ते की होती है, जो न घर का होता है न घाट का।

ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को कुछ कर्तव्य का भार सौंप कर इस संसार में भेजता है और उसे उस कार्य को सफलतापूर्वक निभा लेने के लिए आवश्यक अधिकार या योग्यता भी देता है। यह समझ निरी भूल-भरी और अत्यन्त हानिकारक है कि कर्तव्य-पालन का अधिकार या योग्यता कुछ विशिष्ट इने गिने लोगों को ही है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि "हम अमुक देश-कार्य या सामाजिक सेवा करना चाहते हैं, पर क्या करें हम में योग्यता नहीं, हमारा अधिकार नहीं। ऐसे आत्म-विनाशी विचारों से हमारे तरुण विद्यार्थियों को सदा बचे रहना चाहिए। दृढ़ विश्वास रहे कि हम मनुष्य हैं, और मनुष्य के नाते हमको अपने कर्तव्य-पालन का तथा अपने जीवन को सुखी करने का पूरा अधिकार है। प्रत्येक मनुष्य को पहले इस बात का पता लगाना चाहिए कि ईश्वर ने उसे किस काम के लिए उत्पन्न किया है। जब उसे मालूम हो जाय कि वह अमुक कार्य को करने की स्वाभाविक योग्यता रखता है, तब उसे उचित है कि वह एक क्षण का भी विलम्ब न करके उस महत्कार्य को उत्साह से आरम्भ करदे और अपने परमपिता जगन्नियता से प्रार्थना करे कि "हे जगदीश्वर! तेरी इच्छा के अनुसार ही मैंने अपनी जीवननौका को इस संसार-समुद्र में छोड़ दिया है। अब मुझे केवल तेरा ही सहारा है।" इतना करने पर वह अपना कर्तव्य करता रहे। फिर ईश्वर भी उसका सच्चा सहायक बन जायगा। अवश्य ही उस मनुष्य का अन्त में बेड़ा पार होगा। केवल धैर्य की आवश्यकता होगी, क्योंकि उसे समय-समय पर संसार-समुद्र की लहरों और तूफानों का सामना करना पड़ेगा। उसमें उसको अनेक नाशकारी चट्टानें मिलेंगी। यदि उसने इन सब बाधाओं को कुशलता और सहनशीलता पूर्वक हटा दिया तो फिर उसका जीवन सफल होगा। ऐसे ही मनुष्य को विजयी कहते हैं। उसी का नाम इतिहास के पृष्ठों को प्रकाशित करता है और लोग उसी को कर्म-वीर, देशभक्त, परोपकारी कहने में अपना गौरव समझते हैं।

यदि तुम्हारा जीवन-निर्वाह करने का धंधा दूसरों से तुच्छ गिना जाता हो तो तुम उसको तुच्छ मत मानो। तुम्हारे लिए यही श्रेयस्कर होगा कि उसे तुम समस्त संसार के सभी कामों से बढ़कर समझो और उसको उसी प्रकार से किया करो जैसे कोई मनुष्य अपने उच्चातिउच्च व्यवसाय को अनुपमेय उत्साह से करता है। तुच्छ या छोटा धंधा करना कोई लज्जा की बात नहीं है। लज्जा तो भीख मांगने और परतन्त्रता में होनी चाहिए। हाँ, यह अवश्य एक लज्जास्पद बात होगी यदि तुम अपने कर्तव्य को स्वयं घृणा और अपमान की दृष्टि से देखोगे। इसके लिए एक अच्छा दृष्टान्त है। विलायत में मि0 ग्रे नाम का एक प्रसिद्ध पुरुष था। बचपन में उसकी साम्पत्तिक और व्यावसायिक स्थिति बहुत ही शोचनीय थी। उसके एक मित्र ने उससे एक दिन हंसी में कहा-"मिस्टर ग्रे! अब तो तुम बहुत बातें करना सीख गये,

परन्तु क्यों तुम्हें वह बचपन का जमाना याद है जब कि तुम ढोल बजा बजा कर अपनी जीविका चलाया करते थे?'' प्रिय विद्यार्थियो! देखिए, मि0 ग्रे ने इसका कैसा भावपूर्ण और उचित उत्तर दिया है। उसने कहा ''महाशय! मुझे पूर्णतया स्मरण है कि मैं बचपन में किस तरह से उदर-पोषण किया करता था। मैं जानता हूँ कि मैं ढोल बजाया करता था। परन्तु क्या आपको याद है कि मैं किस उत्तम रीति से तथा प्रफुल्लित हृदय से ढोल बजाया करता था?'' तात्पर्य यही है कि छोटापन या बड़ापन, तुच्छता या श्रेष्ठता, किसी विशेष व्यवसाय में नहीं है, किन्तु अपने हृदय के उस भाव में है जिससे वह व्यवसाय का काम किया जाता है। सफलता के यथार्थ स्वरूप के विषय में उक्त रीति से विचार करने पर पाठकों को झूठी और सच्ची सफलता का भेद आप ही आप मालूम हो जायगा।

अब यह देखना चाहिए कि सफलता के लिए और किन-किन गुणों की आवश्यकता है? ऊपर कहा जा चुका है कि सबसे पहले धैर्य की बड़ी आवश्यकता है। साथ ही साथ जो कार्य हाथ में लिया जाय उसमें पूर्ण उत्साह चाहिए, क्योंकि जिस काम में उत्साह नहीं होता वह बीच में ही छोड़ दिया जाता है। परन्तु धैर्य और उत्साह से भी बढ़कर एक और बड़ा भारी गुण है, जिसके बिना किसी कार्य में मनुष्य को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। उस गुण का नाम है अपनी आत्मशक्ति अर्थात् कार्य करने की योग्यता पर दृढ़ विश्वास। जब तक निश्चयपूर्वक हमें यह दृढ़ विश्वास नहीं रहेगा कि हममें अमुक काम करने की पूरी योग्यता है तथा उसे हम हर हालत में अवश्य कर सकते हैं, तब तक हमारा मन हमें उस काम के करने में योग नहीं देगा और फलतः हम उसको कभी पूरा नहीं कर सकेंगे। हाँ, जो मनुष्य उचित मार्ग का आक्रमण करता हुआ भी किसी कारण-वश सफलता नहीं प्राप्त कर सकता उसका फिर कुछ दोष नहीं है। संसार की अंधी आंखों में चाहे वह भले ही अकृतकार्य समझा जाय, परन्तु सहृदय जन उसे ऐसा कभी न समझेंगे। किसी पाश्चात्य कवि ने कहा है जिसका अर्थ यह है कि-

-(शेष अगले अंक में)

आवश्यकता

तपोभूमि मासिक पत्रिका के पाठकों से निवेदन है कि हमें कुछ पुस्तकों की एक प्रति चाहिए जो हमारे प्रकाशन में उपलब्ध नहीं हैं। पुनः प्रकाशित होने पर आपको मयखर्च वापिस दे दी जावेंगी। वे निम्न हैं-
शुद्ध गीता, शुद्ध इतिहास, शुद्ध मनुस्मृति, उपनिषद प्रकाश (ईश, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, मुण्डको), पर्व चन्द्रिका भाग-2, सुमंगली, स्वास्थ्य और योगासन, पारिवारिक कहानी संग्रह, चित्रमय दयानन्द, महिला गीतांजलि, सत्यार्थ मणिमाला, मार्कण्डेय पुराण समीक्षा, बोध कथायें भाग-1व 2, धर्मोपदेश भाग-1 व 2, स्वराज्य की नींव, वीर पुत्रियां, आर्यसमाज और मानव धर्म, पोपलीला, यज्ञ और यज्ञोपवीत, आदर्श मातायें, दयानन्द दिग्विजय, दयानन्द वचनामृत, मुक्ति सोपान भाग-1व 2, नमस्ते ही क्यों?, भागवत के नमकीन चुटकुले, बालक जो महान बने।

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

दु:खती आँखों की रामबाण दवा

1. किर्मजी रंग (इस रंग की डली होती हैं। यह देखने में हरा होता है परन्तु पानी में घोलने पर बैगनी रंग का हो जाता है) 3 ग्राम आधी बोतल अर्क गुलाब में घोल लें, बस, अद्‌भुत दवा तैयार है। ड्रापर से दिन में 2–3 बार आँखों में डालें। दु:खती आँखें एक ही दिन में ठीक हो जाती हैं। अपने गुणों में अनुपम है।

2. सत्यानाशी (स्वर्णक्षीरी) का दूध सलाई से आंख में लगाएँ। इसके प्रयोग से आंखों का दु:खना और आँखों की पीड़ा दूर होती है। नेत्र–ज्योति बढ़ती है।

3. रुई का फाया लेकर अर्क (आक, आकौड़ा, जिससे रुई–सी निकलती है के दूध में तर करके जिस ओर की आंख दु:खती हो उससे उल्टी ओर के पैर के अंगूठे पर रात–भर रखें। दोनों आंखें दु:खती हों तो दोनों ओर रखें। प्रात: अंगूठे को ठण्डे पानी से साफ कर दें। किसी भी कारण से दु:खती आंखों का शर्तिया इलाज है।

4. भुनी हुई फिटकरी 6 ग्राम, कलमी शोरा 6 ग्राम। दोनों को बारीक पीसकर बरसात के एक बोतल पानी में अच्छी प्रकार घोल लें। बस, दवा तैयार हो गई। दिन में तीन बार ड्रापर से डालने से एक ही दिन में दु:खती आंखों में आराम आ जाता है।

दृष्टिवर्द्धक योग

हल्दी की गांठों को कांच के पात्र में इतने नीबू के रस में डालकर रखें कि गांठें डूबी रहें। 40 दिन के पश्चात् हल्दी की गांठों को गुलाब जल के साथ घिसकर रात्रि में नेत्रों में डालकर सो जाया करें। प्रात: स्नान करने से एक घण्टा पूर्व लगाया करें। कुछ मास लगाते रहने से दृष्टि तीव्र हो जाती है। चश्मा छूट जाता है।

धातुक्षीणता

अश्वगन्ध नागौरी और मिश्री, दोनों समभाग लेकर कूट–पीसकर कपड़छन करें। प्रतिदिन 10 ग्राम फांककर ऊपर से दूध पिया करें। अपार बल एवं शक्ति देने वाला है। वायु–विकारों को दूर करने में रामबाण है।

नकसीर

1. अनार की कली का रस 3 ग्राम, कपूर असली 1 ग्राम। दोनों को मिलाकर नस्य दें। नाक से कैस ही धाराप्रवाही रक्त बहता हो, इसके एक दो बार नस्य देने से ही रुक जाता है। देखने वाले

आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

2. बेर के पत्तों को बिना जल डाले ही सिल पर पीसकर सिर पर गाढ़ा-गाढ़ा लेप लगाओ। नकसीर रुक जायगी।

3. रोगी के दोनों नथुनों में केले के पत्तों का रस 10-10 बूंद डालकर सुंघा दो। नकसीर बन्द हो जाएगी।

4. यदि नकसीर किसी प्रकार से बन्द न होती हो तो आंवले का रस नाक में टपकाएँ और आंवले को पीसकर सिर पर लेप करें। अवश्य लाभ होगा। यदि ताजा आंवले न मिलें तो सूखे आंवलों का पानी तैयार कर लें। उन्हीं को पीसकर सिर पर लगाएँ।

5. ताजा नीबू का रस निकालकर नाक में पिचकारी मारें। एक ही बार में रक्त बन्द हो जाएगा। दूसरी बार प्रयोग की शायद ही आवश्यकता पड़े।

नोट- नीबू के रस से हर प्रकार का बहता हुआ रक्त बन्द हो जाता है।

6. दस ग्राम मुलतानी मिट्टी को रात्रि के समय मिट्टी के बर्तन में आधा किलो पानी में भिगो दें। प्रातः पानी को निथारकर पिलाया करें। वर्षों का रोग कुछ दिनों के प्रयोग से समूल नष्ट हो जाएगा।

7. तीन ग्राम सुहागे को पानी में घोलकर नासिका-रन्ध्रों पर लेप कर दें। नकसीर तत्काल बन्द हो जाएगी।

8. दो ग्रेन कपूर को हरे धनिया के रस में घोलकर नाक में टपकाने से नकसीर बहुत शीघ्र रुक जाती है।

9. कहरवा शमई-यह सुनहरी रंग की गोंद होती है। इसे सूक्ष्म पीसकर शीशी में रख लें। एक ग्राम दवा शीतल जल के साथ रोगी को फंका दें। यदि एक पुड़िया से रक्त बन्द न हो तो एक पुड़िया और दें दें।

10. यदि नकसीर का रक्त बन्द न होता हो तो फिटकरी के पानी में कपड़ा तर करके ललाट पर रख देने से दस मिनट में रक्त बन्द हो जाएगा।

11. दही 125 ग्राम, 250 ग्राम पानी, दोनों की लस्सी बना उसमें 1 ग्राम फिटकरी का चूर्ण मिलाकर पीने से रक्त बन्द हो जाता है, चाहे कहीं से भी रक्त गिर रहा हो।

12. सौ ग्राम साफ आंवले लेकर खूब बारीक पीस लें, जब लेही-सी हो जाए तब सिर के बाल काटकर सारे सिर पर तथा मस्तक पर लेप करने से निश्चय ही लाभ होता है।

13. प्याज कूटकर उसका अर्क 4-4 बूंद दोनों नथुनों में डालने से कई बार अद्भुत लाभ होता है।

14. दूब का अर्क या अनार का रस डालना भी लाभकारी है।

15. दूब का अर्क। दूब को कूटकर उसका निकाल हुआ पानी, जिस नासिका-छिद्र से रक्त जा रहा हो उससे उल्टे कान में डालो। यदि दोनों छिद्रों से जा रहा हो तो दोनों कर्ण-छिद्रों में डालो। नकसीर

बन्द होगी।

16. ओंघा की जड़ पीसकर सुंघाने से नकसीर बन्द हो जाती है।

17. अरण्डी के छिलकों की राख को जिस नथुने से नकसीर बह रही हो उसमें फूंक दें। नकसीर बन्द हो जाएगी।

नक्तान्ध (देखो रतौंधी)

भोजन के एक घण्टे पश्चात् चौलाई का शाक बनाकर बिना नमक-मिर्च मिलाये जितना खा सकते हों घी मिलाकर खाएँ। तीन दिनों में रोग समूल नष्ट हो जाएगा।

नपुंसकता

1. शुद्ध गन्धक और लौह भस्म को बराकर ले खरल कर लें, फिर इसकी 1॥ ग्राम मात्रा लेकर 10 ग्राम शहद और 5 ग्रा घी में मिलाकर खाने से बलवीर्य की पुष्टि होती है और बाल काले हो जाते हैं। दूध अधिक मात्रा में पिएँ।

2. मालकांगनी का तेल 40 ग्राम, घी 80 ग्राम, शहद 120 ग्राम। उपर्युक्त सामग्री को मिलाकर एक कांच के बर्तन में रख लें। प्रातः सायं 6 ग्राम दवा के सेवन से दिव्यदृष्टि होती है। राजयक्ष्मा और नपुंसकता दूर होती है। गाय का दूध अधिक मात्रा में पिएँ। 40 दिन तक सेवन करें।

नव-यौवन के लिए

आंवले का चूर्ण आधा किलो लेकर इसमें इतना आंवले का रस डालें कि चूर्ण पूर्णरूपेण भीग जाए। अब इसे खरल में डालकर घोटें। जब रस बिल्कुल सूख जाये तब पुनः आंवले का रस डालकर तर कर लें और पुनः घोटें। इस प्रकार 21 बार करें। इस चूर्ण का प्रयोग 6 ग्राम से लेकर 10 ग्राम तक ताजा गोदुग्ध के साथ करें। इसके सेवन से वृद्धावस्था दूर होकर शरीर में नव-यौवन पैदा होता है।

नारी के अनेक रोगों पर एक दवा

आक की जड़ छाया में सुखाकर एवं बारीक पीसकर सुरक्षित रखें। इसकी मात्रा दो से आठ ग्रेन तक है।

इसके सेवन से मासिक का खुलकर न आना, दर्द से आना, पूरी मात्रा में न आना अथवा बिल्कुल न आना आदि शिकायतें दूर हो जाती हैं। मन्दाग्नि नष्ट होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। वायु-गोला, कटि-पीड़ा, हड़फूटन दूर होकर शरीर में स्फूर्ति और चुस्ती आती है।

नाल-परिवर्तन

1. जिसके घर में लड़कियाँ-ही-लड़कियाँ उत्पन्न होती हों, उसे मोरपंख के आसमानी रंग के चाँद को कैंची से बारीक काटकर और गुड़ में लपेटकर उसकी गोली बना लेनी चाहिए। तीन चाँदों की तीन गोलियाँ बनाएँ। उक्त चूरा कैप्सूल में रखकर भी दिया जा सकता है।

दो मास का गर्भ पूरा होने पर 1-1 गोली प्रातःकाल बछड़ेवाली गौ के दूध के साथ गर्भवती को

निगला दें। शर्तिया पुत्र ही उत्पन्न होगा। सहस्रों बार का परीक्षित है।

3. जिस स्त्री के कन्या-ही-कन्या होती हों उसे ऋतुकाल में पलाश (ढाक) का एक पत्ता दूध में पीसकर पिला दें। ऐसा करने के बाद जो सन्तान उत्पन्न होगी वह पुत्र ही होगा।

नासिका-रोगों पर

1. पुनर्नवा के पत्तों का रस नाक में टपकाने से नाक के कीड़े उसी समय बाहर आ जाते हैं। कण्ठमाला नष्ट होती है। सिर का वरम दूर होता है। एक प्रकार से गर्दन के ऊपर के हिस्से का कायाकल्प हो जाता है।

2. कपूर, शुद्ध तारपीन का तेल, दोनों को समभाग लेकर एक शीशी में भर लें। फिर शीशी में मजबूत कार्क लगाकर धूप में रख दें। दो घण्टे बाद खूब हिलाएँ। जब दोनों मिलकर एकजान हो जाएँ तब दवा तैयार है।

इसकी 4-5 बूँद प्रातः सायं नाक में डालने से कृमि (कीड़ों के कारण होने वाला) सिर-रोग और पीनस 3-4 दिनों में ठीक हो जाते हैं।

3. कायफल 10 ग्राम, पोटाशियम परमैंगनेट 4 ग्रेन, दोनों को कूट-पीस, कपड़छन करके शीशी में सुरक्षित रखें। 2 ग्रेन दवा नासिका द्वारा सूँघने से छींकें आकर नाक खुल जाती है और सिर फूल की भाँति हल्का हो जाता है।

नासूर

1. पुराना शहद घाव में भरकर ऊपर से पट्टी बाँध दें। कुछ ही समय में नासूर ठीक हो जाता है।

2. मरे हुए मनुष्य की जली हुई हड्डी लेकर उसे पीसकर कपड़छन कर लें।

इस चूर्ण को नासूर पर बुरककर पट्टी बाँध दें। बिगड़े-से-बिगड़ा और पुराने-से-पुराना नासूर 5-7 दिनों में ठीक हो जाता है।

नोट- नाक के नासूर पर न लगाएँ।

3. खरेंटी को गोमूत्र में पीसकर लगाने से भी नासूर ठीक हो जाता है।

4. मनुष्य के कटे हुए नाखूनों का कपड़छन चूर्ण बुरकने से भी नासूर में शीघ्र लाभ पहुँचता है।

5. सेलखड़ी 20 ग्राम अण्डी के तेल में घिसें। जब गाढ़ा हो जाए तो रुई की बत्ती उस तेल में भिगोकर नासूर में भर दें। नासूर ठीक हो जाएगा।

6. बथुए के पत्ते, तमाखू के बीज, दोनों को समभाग लेकर घी में घोटकर नासूर पर लगाएँ। नासूर शीघ्र अच्छा हो जाएगा।

7. भैंस के सींग को जलाकर राख कर लें। इस राख को घी में मिलाकर नासूर में लगाने से नासूर शीघ्र अच्छा होने लगता है।

-(शेष अगले अंक में)

भक्त की अभिलाषा

रचयिताः कविवर 'सनेही' (सरस्वती)

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ।
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ।
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ॥

❁

तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ।
तू है अगर दक्षिण–पवन तो कुसुम की मैं धूल हूँ।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूँ।
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अंक में आसीन हूँ॥

❁

तू अगर सर्वाधार है तो मैं एक आधेय हूँ।
आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या अश्रेय हूँ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ।
तुझको नहीं मैं भूलता हूँ, दूर हूँ या पास हूँ॥

❁

तू है पतितपावन प्रकट तो मैं पतित मशहूर हूँ।
छल से तुझे यदि है घृणा तो मैं कपट से दूर हूँ।
है भक्ति की यदि भूख तुझको तो मुझे तब भक्ति है।
अति प्रीति है तेरे पदों में, प्रेम है, आसक्ति है॥

❁

तू है दया का सिन्धु तो मैं दया का पात्र हूँ।
करुणेश तू है, चाहता मैं नाथ करुणा मात्र हूँ।
तू दीनबन्धु प्रसिद्ध है मैं दीन से भी दीन हूँ।
तू नाथ! नाथ अनाथ का असहाय मैं प्रभु हीन हूँ॥

तब चरण अशरण शरण हैं मुझको शरण की चाह है।
तू शीतकर है दग्ध को, मेरे हृदय में दाह है।
तू है शरद-राका-शशी ममचित्त-चाह चकोर है।
तव ओर तज कर देखता यह और की कब ओर है॥

❁

हृदयेश! अब तेरे लिए है हृदय व्याकुल हो रहा।
आ-आ! इधर आ!! शीघ्र आ! यह शोर यह गुल हो रहा।
यह चित्त-चातक है तृषित, कर शान्त करुणा-वारि से।
घनश्याम! तेरी रट लगी आठो पहर है अब इसे॥

❁

तू जानता मन की दशा रखता न तुझसे बीच हूँ।
जो कुछ कि हूँ। तेरा किया हूँ। उच्च हूँ या नीच हूँ।
अपना मुझे अपना समझ तपना न अब मुझको पड़े।
तज कर तुझे यह दास जाकर द्वार पर किसके अड़े॥

❁

तू है दिवाकर तो कमल में, जलद तू है मोर हूँ।
सब भावनाएँ छोड़ कर अब कर रहा यह शोर हूँ-
मुझमें समा जा इस तरह तन प्राण का जो तौर है।
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूँ। तू और है॥

❁❁❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2017 का वार्षिक शुल्क** बार-बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष **2017** तथा **2018** का वार्षिक शुल्क अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। वर्ष 2017-2018 का वार्षिक विशेषांक **शान्ता** आप तक पहुँचाया जा चुका है। अतः आपसे पुनः निवेदन है कि आप शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भेजकर अपनी प्रत्येक माह की पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहें। आशा है पाठकगण अविलम्ब शुल्क जमा करेंगे।

-व्यवस्थापक

भक्ति रहस्य

लेखकः स्वामी सत्यानन्द महाराज

इस भव-सागर से पार पाने के लिए भगवद्भक्ति के समान दूसरी नौका नहीं है। भक्ति-धर्म भक्त जीवन को कोमल, सुन्दर और रसमय बनाता है, उसमें करुणा, कृपा तथा परोपकार के भाव भरता है, उसे नम्र, सुशील और विनीत बनाता है, दीन-दरिद्रों के दुःख दूर करने के लिए सेवार्थ समुद्यत करता है, यहाँ तक कि पीड़ित प्राणी के परित्राणार्थ प्यारे प्राण तक का परित्याग कर देने को प्रस्तुत कर देता है। आज तक संसार में भक्तिमय धर्म ही से सारे सुधार हुए हैं। हों भी क्यों न, जब यह परमात्म प्रेम की नींव पर स्थिर है, क्रियात्म है, जीवन-विश्वास है, और आशावाद की जड़ है।

भक्ति-धर्म में परोपकारादि सार्वजनिक कार्य भी सम्मिलित हैं, परन्तु यह परमात्मा के विश्वास का, उसके स्मरण का, चिन्तन का और आराधन का मुख्य स्थान है। महर्षि दयानन्द भक्ति-धर्म के सारे अंगों का पालन और उपदेश करते थे। उनका ईश्वर-विश्वास इतना बढ़ा हुआ था कि परमात्मा की उपस्थिति वे सदा अपने अंग-अंग समझते थे।

स्वामी जी की दृढ़ विश्वास था कि यत्नशील जन को शुभ कार्य में, ईश्वर ही सहायता देता है। इस विश्वास को वे यों प्रकट करते हैं-'ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रखा है, उतना पुरुषार्थ मनुष्य अवश्य करे। उसके उपरान्त ईश्वर की सहायता की कामना करना उचित है।' सब मनुष्य ईश्वर की सहायता की कामना करें, क्योंकि उसकी सहायता के बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उसका पूरा अनुष्ठान कभी नहीं हो सकता।'

स्वामी दयानन्द जी भी अन्य भगवद भक्तों के सदृश कृपावादी थे। **"यमे वैष वृणुते तेन लभ्यः"** जिस जन पर जगदीश्वर कृपा करते हैं, वही उनको पाता है। इस वाक्य पर उनकी ध्रुवधारणा थी। भक्ति-योग के इस भाग को इन भावों में उन्होंने कहा है-'परमेश्वर हमारे माता-पिता के समान है। हम सब वह नित्य कृपा-दृष्टि रखता है। परम कृपालु प्रभु ने प्रजा के सुखार्थ कन्द-मूल, फल-फूलादि छोटे-छोटे पदार्थ भी रचे हैं।' जो मनुष्य परम दयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है। जो जन भगवान् के भक्त हैं वे सदा सुखी रहते हैं। सबके पिता और परम गुरु परमात्मा ने कृपा पूर्वक हमको सब व्यवहारों और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है जिससे हम व्यवहार-ज्ञान और परमार्थ-ज्ञान पाकर परम सुखी हों।'

चाँदपुर में उन्होंने जगत् कर्त्ता की कृपा का वर्णन इन शब्दों में किया था-**'प्रार्थना का फल यह है** कि जब कोई जन अपने सच्चे मन से, अपने आत्मा से, अपने प्राण से और सारे सामर्थ्य से परमेश्वर

का भजन करता है, तब वह कृपामय परमात्मा उसको अपने आनन्द में निमग्न कर देता है। जैसे छोटा बालक घर की छत पर अथवा नीचे से अपने माता-पिता के पास जाना चाहता है, तो उसके माँ-बाप, इस भय से कि हमारे प्रिय पुत्र को इधर-उधर गिर पड़ने से कष्ट न हो, अपने सहस्रों कामों को छोड़, दौड़;कर उसे गोद में उठा लेते हैं, वैसे ही परम कृपा निधि परमात्मा की ओर यदि कोई सच्चे आत्मभाव से चलता है, तब वह भी अपने अनन्त शक्तिमय हाथों से उस ज़ीव को उठाकर सदा के लिये अपनी गोद में रख लेता है, फिर उसको किसी प्रकार का कष्ट-क्लेश नहीं होने देता, और वह जीव सदा आनन्द ही में रहता है। परमात्मा माता- पिता की भाँति अपने भक्तों को सदा सुख-सम्पन्न करने ही की कृपा करता है।'

भक्ति मार्ग में नाम-स्मरण-जप का बड़ा महत्व माना है, पतंजलि मुनि ने भी **'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'** प्रणव का जप और उसके अर्थों का चिन्तन बताकर नाम-स्मरण की महत्ता पर मुहर लगा दी है। मनु महाराज ने भी जप-आराधना को आत्म-कल्याण का एक उत्तम साधन वर्णन किया है, पाप-ताप से परित्राण पाने का एक पवित्र उपाय बताया है। सब समयों के सन्तों की सम्मति में आत्मिक विकास के साधनों मं सहजाभ्यास (स्मरण) एक सीधा, सरल सुलभ और सुगम साधन है।

श्री स्वामीजी ने उपदेश किया है-'उसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ-विचार सदा करना चाहिए।' **'जो पुरुष संन्यास लेना चाहे** वह तीन-दिन तक दुग्धपान-सहित उपवास करे, भूमि पर सोवे, प्राणायाम, ध्यान तथा एकान्त देश में ओंकार का जप करता रहे। जो जानने की इच्छा से गौण संन्यास ले वह भी विद्या अभ्यास, सत्यपुरुषों का संग, योगाभ्यास, ओंकार का जप और उसके अर्थ-परमेश्वर का विचार-भी किया करे।'

स्वामी विरजानन्द जी ने बहुत काल तक गंगा में खड़े होकर गायत्री का जप किया था। महाराज ने बद्रीनारायण में रहकर स्वयं भी इस इष्ट मन्त्र का अनुष्ठान किया था। वे यज्ञोपवीत धारण करने वालों से पहले गायत्री का पुरश्चरण कराया करते थे।

गंगाराम नाम के एक सज्जन को उत्तर देते हुए। महाराज ने कहा था-**काम-वासना जीतने का यह विधान है** कि एकान्त स्थान में रहे और नृत्यादि कभी न देखे। अनुचित रूप का देखना, अनुचित शब्द का सुनना और अनुचित वस्तुओं का स्मरण करना परित्याग कर दे। नियम-पूर्वक जीवन व्यतीत करे। मनुष्य जितना वासना की तृप्ति का यत्न करेगा, वह शान्त न होकर उतनी ही अधिक बढ़ती चली जायगी। इसलिये विषय-वासना का चित्त में चिन्तन भी न करे। जितेन्द्रिय बनने अभिलाषी को रात दिन प्रणव का जप करना चाहिए। रात को यदि जप करते हुए आलस्य बहुत बढ़ जाय तो 2 घण्टा गाढ़ निद्रा लेकर उठ बैठे और पूर्ववत् प्रणव-पवित्र का जप करना आरम्भ कर दे।'

❁❁❁

प्रारम्भिक शिक्षा के रूप

लेखकः डॉ० गोकुलचन्द गारंग

प्रथमावस्था में बालक जो–2 प्रभाव पड़ते हैं, वह बाहरी वस्तुओं के द्वारा ही पड़ते हैं। वह उन्हीं बातों में रुचि प्रकट करता है, जो उसे नेत्र कान से–स्वाद से और अनुकरण से विदित होती रहती है। अनुकरण करने का स्वभाव बालक में अत्यन्त अधिक होता है। इसी से वह हँसना बोलना और चलना फिरना सीखता है। गूंगे और बहरे बालकों में श्रवण और वाचन शक्ति का ह्रास नहीं होता है, उनमें शक्तियां सभी विद्यमान होती हैं, परन्तु उनके वाचन और श्रवण के पात्र ही खराब होते हैं। जो चेष्टा करने से सुधर सकते हैं। बहुधा बालक भली प्रकार समझने की शक्ति न रखने पर आवाज पर नाम रख लिया करते हैं। जैसे बिल्ली को मानू कहते हैं उसकी मेऊं शब्द पर बालक उसका नाम मानु रखते हैं। दूसरों का अनुकरण करने में बालक सिद्ध हस्त हुआ करते हैं। मुंह बनाना–नाक चढ़ाना–आंखें निकालना– तेवर बदलना इन सब बातों की वह ऐसी नकल उतारते हैं, कि असल मालूम देने लगती हैं। बढ़ई के बच्चे वसूले आदि ठोंका पीटा करते हैं। पंडितों के बच्चे चन्दन घिसा करते हैं, आदि–आदि।

बालकों की स्मरण शक्ति और अनुमान शक्ति बड़ी तीव्र होती है वह अपनी अनुमान शक्ति द्वारा अपने लक्षित कार्य को असली समझ लेते हैं। छड़ी पर सवार होकर, बालक शीघ्रगामी घोड़े का आनन्द लिया करते हैं। यह न जानना चाहिए कि उनको आनन्द नहीं आता। किन्तु अनुमान को वह उसी वस्तु या कार्य से लगाते हैं कि जिसके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं कुछ देखा–सुना अथवा पढ़ा हो। वह कल्पना शक्ति द्वारा नया आविष्कार नहीं कर सकते। एक बार एक अंग्रेज कन्या को देखा गया था, कि वह अपनी गुड़िया फूलों में छुपा–दोनों घुटने टेक कुछ बड़बड़ाया करती थी। कारण यह था, कि उसका एक भाई मर गया था। वह उसकी लाश के साथ गई थी और गाढ़ने की सारी क्रिया देखती रही थी। भ्रातृशोक तो वह समय के प्रभाव से भूल गई, किन्तु उसका हृदय उस दृश्य को न भुला सका। वह इस कारण कि उसने यह बाहर देखी थी। कहा जा चुका है, कि बालक देखा सुना ही अनुकरण में किया करते हैं। नूतन आविष्कार नहीं कर सकते। फलतः उनके अनुकरण की सामग्री आदर्श होनी चाहिए।

यदि आप देखें, कि कोई कन्या अपनी गुड़िया को पीट रही है, तो समझ लीजिये, कि वह खुद ही पीटी गई है। धीरे–2 वह गुड़ियों को त्याग कुत्ते के बच्चों को पीटेगी और अन्त में मनुष्यों को सतावेगी।

छोटी अवस्था में सूक्ष्म विचारों को बालक हृदयंगम नहीं कर सकते। मूर्ख मनुष्य और बालक में इस विषय में कोई अन्तर नहीं होता। यदि दोनों के सामने किसी ऐसी बात का वर्णन किया जाय, कि जो हृदय से देखी जा सके, तो दोनों ही अपने चित्त में कोई ऐसा चित्र खींचेंगे, कि जो उन्होंने कहीं देखा हो। इस कारण ऐसे नासमझ बालकों के सामने किसी गम्भीर बात की चर्चा कर, उन्हें घबड़ाहट में न डाल देना चाहिये। हां, उनसे इस प्रकार की बातें करना हानिकारक नहीं, वरन् लाभदायक होंगी, कि जिससे उनके विचार ऊँचे हों चित्त में शान्ति और सुन्दरता आवे। विचारने की जगह मिले।

बालक को सुन्दरता प्रिय बनाना चाहिये। किसी न किसी प्रकार की सुन्दरता बालकों के हृदय में अवश्य होनी चाहिये। सुन्दरता प्रिय बालक सदैव सचरित्र होता है। उसे अवगुणों में सौन्दर्य दृष्टि न पड़ेगा, अतः वह पापी न बनेगा, मोनटीन साहब फ्रांस देश में एक प्रसिद्ध फिलास्फर हो गये हैं। उनके पिता उनको बचपन में सर्वदा सुन्दर वाद्य और सुन्दर गाने (स्वर, भाव दोनों से) सुनाया करते थे। प्रकृति का सौन्दर्य दिखाया करते थे। इन बातों से एक तो ज्ञान का भंडार बड़ी सरलतापूर्वक भरता है और दूसरे स्वभाव हंसमुख हो जाता है। फोटो की तस्वीरों से भी बच्चा सौन्दर्य उपासक बन सकता है यदि किसी बालक ने श्रीकृष्ण जी की मनोहर तस्वीर देखी है तो वह उसे आजन्म विस्मरण नहीं कर सकता। किन्तु ऐसी तस्वीरों को कि जिनमें किसी की मिट्टी पलीत की गई हो अथवा दूषित सुन्दरता चित्रित हो, कभी न दिखलाई जानी चाहिये क्योंकि वह बच्चे वास्तविक भाव को नहीं समझ सकते।

यूरोप में हजारों पुस्तकें प्रतिवर्ष इस प्रकार की प्रकाशित की जाती हैं कि जिनसे बच्चों में सुन्दर स्वभाव की बुनियाद बैठती है। इन चित्रों द्वारा बालकों का केवल मनोविनोद ही नहीं होता किन्तु वह अपने मस्तिष्क से इतना ज्ञान (जानकारी) भर लेते हैं कि जितना यहां के बच्चे कई वर्ष में पुस्तकें घोट कर मालूम कर पाते हैं, ऐसी ही पुस्तकें अंग्रेज जाति का विचारवान, बुद्धिमान, हंसमुख और विद्वान् बनाने में सहायता देती हैं।

बालक के सन्मुख शोर और व्यर्थ की बातें कभी न करना चाहिये। जब अवकाश किले, तब अच्छे पद और कविता उसे अच्छे स्वर के साथ सुनाना चाहिये। हम सुर ताल नहीं जानते इस बात पर विवाद बढ़ाना व्यर्थ है। प्रयोजन यह है कि बालक के कानों में गाने वाले का शब्द प्रिय लगे, कटु नहीं, बस। जिस प्रकार गन्दगी से घृणा और पवित्रता से प्रेम करना बच्चे को सिखाना आवश्यक है, वैसे ही सुन्दर भाव के सुन्दर गानों से रुचि पैदा करना भी आवश्यक है।

युवावस्था में बहुधा दुःख ही दुःख मनुष्य पर पड़ते जाते हैं और वह सदा मलीन मुख रहा करता है, जो हर एक ओर से हानिकारक है। इस कारण बचपन में उसकी चित्त की वृत्ति किसी खास ओर को कर देनी चाहिये, कि जिस से वह आपत्तिकाल में धैर्य धारण करे, और हृदय को चिन्ता की भट्टी न बना डाले, वरन् इसे भूल पुनः अपने आनन्द में मग्न हो जावे, ईश्वर प्रेम, पुस्तक प्रेम और सबसे अच्छा और विस्तृत प्रकृति प्रेम बच्चों को सिखलाना चाहिये। प्रकृति माता की गोद विचित्रता और सुन्दरता से इतनी विस्तृत है कि उसका पार पाकर नेत्रों को दूसरी ओर दृष्टि करने की आवश्यकता ही न होगी। प्रकृति प्रेमी सर्वदा सन्तोषी, धैर्यवान और हंसमुख होता है।

इसके सिवाय प्रकृति से बच्चा, ज्ञान लाभ भी खूब करेगा। जंगल का पाठ नदी के पास नदी का वृतान्त और पक्षियों के पास ले जाकर उनके नाच और रहन सहन का विवरण ऐसी मनोरंजकता के साथ याद कराया जा सकता है कि जिसका दृश्य स्कूल में कभी देखने के लिये भी नहीं मिल सकता।

फिलास्फरों का विचार है, कि जो प्रकृति प्रेमी हैं, वह कभी नीचता और कमीनेपन को अपने पास नहीं फटकने देगा।

बच्चे के साथ सदैव तुले हुये सभ्य शब्दों में सम्भाषण करना चाहिये। सदैव अच्छी संगत में बैठालो। यदि

आप बच्चे की तरफ ध्यान देकर अपना कर्त्तव्य पालन करें, तो वह सहज ही में कई भाषाएं सीख सकता है। मधुरता एवं नम्रता सीख सकता है। इस समय अर्थात् बचपन में उनकी अनुकरण और स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र होती है, इस कारण वह छोटे पौधे की भांति उस ओर को तुरन्त झुक जायेंगे, कि जिस ओर को उन्हें झुकने में सहायता दी जाय। बड़े होने पर यह सौभाग्य आकाश कुसुम हो जाता है।

प्रकृति की कृपा अथवा ईश्वर दया से जिस प्रकार चरित्र गठन होने के लिये बच्चों में स्मरण शक्ति और अनुकरण शक्ति अधिक होती है उसी प्रकार हमारे हृदय में सुशिक्षाओं को स्थान देने के लिये कहानियां होनी चाहियें। कहानी की प्रियता से माता-पिता बच्चों को अधिक सुधार करते हैं। कहानी धीरे-धीरे और साफ व शुद्ध भाषा में उतार चढ़ाव के साथ कहनी चाहिये। हमेशा उपदेशप्रद कहानी कहनी चाहिये। कहानी के अन्त में बच्चे से कहानी के पात्रों की समालोचना कराओ। रामायण, महाभारत के पात्रों का हाल व अन्य प्रसिद्ध मनुष्यों के जीवन रोचक कहानी रूप में सुनाना चाहिये। इस प्रकारसे सद्गुणों के प्रति रुचि और दुर्गुणों के प्रति अरुचि सरलता पूर्वक उत्पन्न हो सकती है।

कहानी सुनाते समय यदि कहानी वालों का चित्र हो तो अति उत्तम हो। चित्र दिखाकर उसकी जीवनी वर्णन करने से और भी लाभ होता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि बच्चे मनोरंजकता के लिये कहानी सुना करते हैं। सूखी कथा उन्हें नहीं सुहाती। इसके अतिरिक्त माता पिता अन्य दृष्टान्तों और घटनाओं से भी यह कार्य कर सकते हैं। और सारी बातों का तत्व तो यह है कि माता पिता स्वयं कुछ हों तभी बच्चे पर और क्या अन्य पर प्रभाव पड़ता है। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती		महापुरुषों की पुण्यतिथि	
महात्मा गांधी	2 अक्टूबर	गुरु गोविन्दसिंह	7 अक्टूबर
लालबहादुर शास्त्री	2 अक्टूबर	जयप्रकाश नारायण	8 अक्टूबर
रानी दुर्गावती	5 अक्टूबर	राममनोहर लोहिया	12 अक्टूबर
महाराज अग्रसेन	10 अक्टूबर	विट्ठलभाई पटेल	22 अक्टूबर
जयप्रकाश नारायण	11 अक्टूबर	इन्दिरा गांधी	31 अक्टूबर
सूर्यसेन	18 अक्टूबर		
महर्षि वाल्मीकि	22 अक्टूबर	1 अक्टूबर	वरिष्ठ नागरिक दिवस
गुरु रामदास	26 अक्टूबर	1 अक्टूबर	रक्तदान दिवस
भगिनी निवेदिता	28 अक्टूबर	4 अक्टूबर	राष्ट्रीय अखण्डता दिवस
श्यामजी कृष्ण वर्मा	30 अक्टूबर	10 अक्टूबर	डाकतार दिवस
डॉ0 होमी भाभा	30 अक्टूबर	19 अक्टूबर	विजयदशमी
सरदार बल्लभभाई पटेल	31 अक्टूबर	21 अक्टूबर	आजाद हिन्द फौज स्थापना दिवस

जब हिमालय रो पड़ा.....

लेखकः आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक, भागलभीम (जालौर) राज०

हिमालय इस भूमण्डल का एक सर्वाधिक पवित्र पर्वत रहा है। यह देवभूमि व ऋषियों की तपस्थली के रूप में सर्वत्र विख्यात रहा है। इस महान् नगराज ने अपनी पवित्र गोद में परमयोगिराज भगवत्पाद महादेव शिवजी एवं योगेश्वरी भगवती उमादेवी के साथ योग साधना के साथ-साथ वैदिक विज्ञान के द्वारा ब्रह्माण्ड के गंभीर रहस्यों को उद्घाटित करते, दुष्ट दलनार्थ पाशुपत जैसे महान् अस्त्रों का निर्माण करते देखा है। इसी हिमगिरि ने परमर्षि भगवान् ब्रह्माजी, अमित पराक्रमी भगवान विष्णु जी एवं महान् एवेश्वर्यसम्पन्न देवराज इन्द्र को योग साधना के साथ-साथ वेद द्वारा भौतिक एवं आध्यात्मिक विद्याओं की गहन साधना करते देखा है। इसी की पावनी गोद में सहस्रों तपःपूत देवों व ऋषि-मुनियों को परमपिता परमात्मा की अमृतरूपी छाया में आनन्द की अनुभूति करते देखा है। इसी की गोद से निःसृत पवित्र गंगा-यमुना आदि सरिताओं के तीर पर आर्य महापुरुषों व योगियों को योगाभ्यास एवं इसके द्वारा वेद विद्याभ्यास करते देखा है। इसी की गोद में दुष्यन्त पुत्र भरत जैसे चक्रवर्ती सम्राट् पले-बढ़े एवं संस्कारित हुए थे। वैदिक धर्म के महान संरक्षक योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण अपनी धर्मपत्नी भगवती रुक्मिणी के साथ विवाहोपरान्त गर्भाधान से पूर्व 12 वर्ष परमात्मा की साधना में मग्न रहे थे। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम, महावीर परमविद्वान् बाल ब्रह्मचारी हनुमान, महान् धनुर्धर अर्जुनादि पांडवों एवं अनेक महापुरुषों का किसी न किसी प्रकार इस महान् पवित्र पर्वतराज से सम्बन्ध रहा है।

हे हिमालय! तुम्हें इन सभी महापुरुषों पर बड़ा गर्व था। सम्भवतः तुम सोचते थे कि इन महापुरुषों की संतति ऐसे ही महान आदर्शों वाली बनी रहेगी। किन्तु धीरे-धीरे इस हिमालय में इस भारत को बर्बर विदेशी आतातायियों से पैरों तले कुचलते देखा और इसने इस भारत के कई टुकड़े होते भी देखा। यह सब दृश्य देखकर तुम घायल अवश्य हुए परन्तु टूटे नहीं। तुमने तैमूर, बाबर, अकबर, औरंगजेब, डायर आदि के अत्याचारों को देखा, तब भी तुम टूटे नहीं, परन्तु जब कथित स्वतन्त्र भारत में शासन व न्यायालयों ने वैदिक व भारतीय संस्कृति-सभ्यता पर करारी चोट की, स्वतन्त्रता के नाम पर दुराचारिणी स्वछन्दता को सम्मान मिला, तब तुम्हारे हृदय से आह फूट पड़ी। जब सर्वोच्च न्यायालय ने 'लिव इन रिलेशन' के नाम से किसी कन्या वा विवाहित महिला का किसी भी परपुरुष के साथ स्वेच्छया रहने को वैध ठहराया और उसमें भगवान श्रीकृष्ण जी महाराज का नाम घसीटा गया, तब तुम्हारा हृदय टूट गया और आह भी न कर सके। तुम्हारी यह दीनदशा को देखकर प्राचीन ऋषियों व देवों के आत्मा भी भयभीत हो गये। अब दिनांक 06.09.2018 को पुनः सर्वोच्च न्यायालय ने तुम्हारे हृदय में छुरा घोंप दिया। समलैंगिकता के घोर पाप व अप्राकृतिक कुकृत्य को वैध बताकर यह सिद्ध हो गया कि यह देश मनुष्यों के रहने योग्य तो क्या, यहाँ जंगली जानवर व पशु-पक्षी भी भय खाएंगे। इस निर्णय से हिमालय का हृदय विदीर्ण होकर आहें भरने लगा। अब कल के निर्णय को सुनकर जंगली और पालतू-पक्षी भी भागने लगेंगे। उन्हें भय होगा कि ये समलैंगिक कामी स्वछन्द मानव शरीरधारी कहीं उन्हें ही अपनी हवस का शिकार न बना लें। ये जानवर जजों, वकीलों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, मीडियाकर्मियों, मानवाधिकारवादियों, उच्च प्रबुद्ध कहाने वाले, सभ्य व प्रगतिशील दीखने वालों को देखकर विशेष रूप से

भागेंगे, क्योंकि स्वच्छन्दताजन्य कामज्वर इन्हें ही अधिक सता रहा है। स्वच्छन्द कामुक भोजन, कामुक अध्ययन, कामुक दर्शन-श्रवण, फिर शासन व न्यायालयों के कामुक निर्णयों की मुहर, तब दुधमुँही बच्चियों पर अत्याचार क्यों नहीं होंगे? अब तो घरेलू चिड़िया व चिड़ा जैसे काम़ी पक्षी भी इस कामी मानवदेहधारी जानवर को देखकर चीं-चीं करते भाग जाया करेंगे। अब उन्हें जितना भय अपने शिकारी जानवर और मनुष्य का नहीं होगा, उतना भय शिक्षा व सभ्यता का आवरण ओढ़े इस बर्बर कामी व स्वच्छन्द कथित मनुष्य का होगा। इस कथित मनुष्य को जो कुछ भय था, वह दूर हो गया है। देश में राष्ट्रवाद का शंखनाद करने वाले संगठन वा नेता मौन हैं, मानो उनकी वाणी की लकवा मार गया है। उधर एक भगवाधारी समलैंगिकता का पुरोधा अग्नि के समान रंग का वेश धारण करने वाला एक कथित संन्यासी प्रसन्नता से झूम रहा है। देश-विदेश का मीडिया आनन्द मना रहा है। इस समलैंगिकता के पुरोधा नकली बाबा ने महान् ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती व आर्यसमाज के सिद्धान्तों की अन्त्येष्टि कर डाली है। दुर्भाग्य से इस बाबा के समर्थक स्वयं को आर्यसमाजी व महर्षि दयानन्द सरस्वती का भक्त कहते हैं। इन्होंने आर्यसमाज को खंड-खंड कर डाला है, तो कुछ महानुभाव एकता का प्रयास कर रहे हैं। ये संगठनवादी समलैंगिकता, आतंकवाद, नक्सलवाद, देशद्रोह सबके साथ मिलकर संगठन का परिचय देना चाहते हैं। आर्यसमाज के नियम व वैदिक आर्ष सिद्धांतों की चिता जले, इसकी किसी को कोई चिंता नहीं।

हे हिमालय! तुम्हें कुछ आशा थी, तो ब्रह्मचर्य व वेदविद्या के इस युग के महान् प्रणेता महर्षि दयानन्द के अनुयायी आर्यसमाज से, किन्तु वह भी इन कामी बाबाओं के कारण दिशाहीन होकर भटक रहा व विनाश के पथ पर अग्रसर है। कुछ महानुभाव सोशल मीडिया पर गुरुकुलों में समलैंगिकता होने का प्रचार कर रहे हैं, यह बात सुनी मैंने भी है परन्तु अब सभी कामी चोर की भांति नहीं बल्कि अकड़ कर ये पाप करेंगे। हे पर्वतराज! मैं तुम्हारे दर्द को जानता हूँ। मेरे जैसे अनेक देशभक्त व वेदभक्त भी तुम्हारे दर्द को अनुभव कर रहे हैं। मैं अपने वेदविज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण पापान्धकार को मिटाने की दिशा में शनैः-शनैः आगे बढ़ रहा हूँ परन्तु लगभग जन्म से रुग्ण शरीर व परायों के साथ अपनों का भी विरोध इसमें भारी बाधा उत्पन्न कर रहा है। मैंने जीवन में असत्य भाषण व कर्म को करने की इच्छा भी नहीं की, तब शेष जीवन में भी ऐसा करने की सोच भी नहीं सकता और न असत्य-अधर्म के सम्मुख झुक ही सकता, भले ही कोई भी विपत्ति क्यों न आये। मैंने तुम्हारे दर्द को मिटाने की अचूक दवा को तैयार तो कर लिया है परन्तु इसके विस्तृत अनुसंधान, प्रचार व प्रसार में न केवल देश, वेद, ऋषियों व देवों का दर्द अपने हृदय में समेटे ऊर्जावान, स्वस्थ, बलवान युवा पीढ़ी का साथ चाहिए, अपितु पर्याप्त संसाधनों के लिए निःस्पृह भामाशाह भी चाहिए। आज जो बौद्धिक दास विदेशी ज्ञान विज्ञान व सभ्यता को अपना आदर्श मानते हैं तथा प्राचीन भारतीय व वैदिक ज्ञान विज्ञान को दीन व निकृष्ट मानकर स्वयं को ही मूर्खों का वंशज मानते हैं, उनके मनोरोग व बौद्धिक दासत्व को नष्ट करने की दवा मेरे पास है, जो चाहे, आकर ले सकता है।

हे नागराज! कैसी विडंबना है कि मैं इन अभागे भारतीयों को महाबुद्धिमान् व पवित्रात्मा पूर्वजों का वंशज बताता हूँ, तो ये मंदबुद्धि व मनोरोगी भारतीय मुझे ही गाली प्रदान करते हुए घोषणापूर्वक कहते हैं कि नहीं..... हम तो मूर्खों के वंशज हैं, हम बन्दर आदि पशुओं के वंशज हैं। ऐसे ही अभागे समलैंगिकता व 'लिव इन रिलेशन' जैसे स्वच्छन्दी कानूनों पर नग्न नृत्य करते हैं। ये कानून तो उदाहरण मात्र हैं, अभी तो बौद्धिक दासत्व व निकृष्ट पशुता का प्रारम्भ है। अभी तो कुछ सम्बन्ध पवित्र बचे हैं, धीरे-2 कानून इन्हें भी नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। असुरों, राक्षसों व पिशाचों के आत्मा भी इन कथित प्रगतिशील के आचरण पर लजायेंगे। परन्तु हे

हिमालय! धैर्य रखो, मेरे पास इनके सुधारने के उपाय हैं, संभवतः हजारों सज्जन देशभक्त भी अभी इस आर्यसमाज, हिन्दू समाज वा देश में विद्यमान हैं। वे एक होकर वैदिक ज्ञान-विज्ञान के ध्वज के नीचे आकर इस दासत्व के विरुद्ध संघर्ष अवश्य करेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ। यदि ऐसा नहीं हुआ तो मैं भी तेरी भांति टूट जाऊंगा। इस विषम परिस्थिति व दुर्बल स्वास्थ्य एवं संसाधनों के अभाव में मैं भी कहीं शांत हो जाऊंगा।

❁❁❁

पृष्ठ संख्या 4 का शेष-

बाहर की असमृद्धि के समान ही आन्तरिक असमृद्धि भी होती है। आन्तरिक असमृद्धि मनुष्य की वह स्थिति है। जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि सब गुण उसके अन्तरात्मा से लुप्त हो जाते हैं, एवं 'सद्गुण-दरिद्रता' व्याप जाती है। आओ, हम सब मिलकर भौतिक और आध्यात्मिक उभयविध असमृद्धि को अपने राष्ट्र से और अपने मानस से दूर कर समृद्धि से फूलें-फलें। ❁❁❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार जन-जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या- 144101000002341

दान हेतु- 'श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या- 144101000000351

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

एवं

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में

अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन 2018

(25 से 28 अक्टूबर 2018)

आप सभी को अगवत है कि "**सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एवं दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा**" के संयुक्त तत्वावधान में "**अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन–2018 दिल्ली**" का आयोजन दिल्ली में दिनांक 25–26–27 एवं 28 अक्टूबर 2018 तक किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलनों की परम्परा का आरम्भ वर्ष 1927 में दिल्ली से हुआ था। तब से आर्यों के विशाल संगठन के ये आयोजन देश–विदेश में होते रहे। वर्ष 2006 के दिल्ली महासम्मेलन में लिए गए संकल्प के आलोक में इन महासम्मेलनों की श्रृंखला विदेशों में पुनः आरम्भ हुई और तब से लेकर अब तक **अमेरिका, मॉरीशस, सूरीनाम, हॉलैण्ड, दिल्ली–2012, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर, थाईलैण्ड, ऑस्ट्रेलिया, नेपाल एवं वर्मा** में आर्य महासम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए हैं। अब यह महासम्मेलन पुनः दिल्ली में आयोजित हो रहा है। देश–विदेश में इसकी तैयारियां आरम्भ हो चुकी हैं।

आर्यों के महाकुम्भ इस अन्तर्राष्ट्रिय आर्य महासम्मेलन में समूचे देश व विश्व के अनेक देशों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। वर्ष 2012 के आयोजन के समय 32 देशों के सैकड़ों प्रतिनधियों सहित लगभग डेढ़ लाख आर्यजनों ने सम्मेलन में पहुंचकर समस्त संगठन में ऊर्जा का संचार किया था। यह सम्मेलन पूर्व के आयोजन से भी अधिक विशाल तथा भव्य होगा।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपका सान्निध्य एवं आशीर्वाद हमें सदैव प्राप्त होता रहेगा तभी इस महासम्मेलन की सफलता सम्भव है।

कृपया आप अपने आने का कार्यक्रम निश्चित करके हमें सूचित कर देवें। सम्मेलन की अवधि में आपके भोजन एवं आवास की व्यवस्था सभा की ओर से की जायगी। कृपया अपने आने का कार्यक्रम निश्चित करके पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें। ताकि तदनुरूप व्यवस्थाएं की जा सकें।

–सम्मेलन स्थल–

स्वर्ण जयन्ती पार्क, रोहिणी, सैक्टर–10, दिल्ली (भारत)

सम्पर्क सूत्र– 09824072509, 09826655117, 09810061763

होते हैं। हमारे पूर्वजों ने व्यक्ति और समष्टिगत बातों को ध्यान में रखकर समाज की संरचना के लिए नियम बनाये थे। वे नियम व्यक्ति पर तभी तक लागू होते थे। जब तक वे शारीरिक और बौद्धिक रूप से पूरी तरह परिपक्व नहीं हो जाते थे। उसके बाद उस पर सारे प्रतिबन्ध हट दिये जाते थे। फिर उसके व्यक्तित्व को किसी प्रकार के भी कुसंस्कार हानि नहीं पहुँचाते थे। जैसे जब कोई छोटा वृक्ष लगाया जाता है तब उसके आस-पास काँटे लगा दिये जाते हैं। यद्यपि कहीं पर भी काँटे बिछाना और काटे लगाना निन्दित कर्म समझा जाता है। जब वृक्ष विशालकाय हो जाता है तब उन काँटों को अनुपयोगी मानकर हटा दिया जाता है। यही स्थिति भारतवर्ष के ऋषि-महर्षियों ने व्यक्तित्व के विकास के लिए कठोर नियम लागू करके की थी। जिसको आजकल के तथाकथित बुद्धिवादी लोग संकीर्ण और सामन्तवादी सोच नाम देते हैं। वे भोले लोग यह नहीं जानते यह संकीर्ण और सामन्तवादी सोच न होकर, वह प्रशस्त पथ है। जिस पर चलकर मानव अपने जीवन के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है। राष्ट्र और समाज में शान्ति स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी का यह निश्चल विश्वास था कि ब्रह्मचर्य के बिना मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और अध्यात्मिक विकास होना कभी संभव नहीं है। ब्रह्मचर्य के बिना राज्य का शासन सुशासन नहीं बन सकता। वैसे ही ब्रह्मचर्य केबिना जाति विशेष का उत्थान असंभव है। वे बार-बार कहा करते थे कि "यदि इन मृतपाय: हिन्दुओं को पुनर्जीवित करना है और भारत को पूर्व गौरव प्रदान करना है तो उसका एक मात्र उपाय ब्रह्मचर्य की रक्षा करना है।" स्वामी दयानन्द जैसे स्वयं निश्कलंक ब्रह्मचारी थे और जैसा लाभ ब्रह्मचर्य के द्वारा स्वयं प्राप्त किया था वैसा ही लाभ वे प्रत्येक भारतवासी को देना चाहते थे। इसी हेतु से वे अपने देशवासियों से ब्रह्मचर्य का पालन करने का बार-बार अनुरोध करते थे। वे भारतवासियों को कहा करते थे कि तुम बच्चों के बच्चे और लड़कों के लड़के हो। यदि कोई उनसे पूछता कि आप ऐसा क्यों कहते हो तो वे यह उत्तर दिया करते थे कि आजकल माता-पिता ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं करते इसलिए भारतवर्ष में बच्चों के बच्चे जन्म ग्रहण करते हैं। स्वामी दयानन्द के इस कथन में सन्देह भी नहीं है। हम देखते हैं कि भारतवर्ष में पैदा होने वाले हजारों सन्तान पूंछ और सींगों से हीन पशु के समान ही हैं।

आज देश सच्चे मनुष्य और मनुष्यत्व से शून्य हो रहा है। नरसिंहों के बदले हजारों भेड़ बकरियों ने देश पर अधिकार कर लिया है। सारा देश भेड़ बकरियों के समान उत्पन्न हुई सन्तानों के कोलाहल से भरा पड़ा है। इसमें कोई संशय नहीं है कि केवल यह कहते रहने से कि इस देश के निवासी मनुष्य उत्पन्न नहीं करते और न कर सकेंगे। भेड़ बकरियों की तरह मनुष्य जन्म ग्रहण नहीं करने लगेंगे। यदि यथावत ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए देश में व्यवस्था बने तो निश्चित रूप से भारतवर्ष आदर्श मनुष्यों से परिपूर्ण हो जायगा फिर कहीं पर भी लूटपाट, चोरी, डकैती, अपहरण, बालात्कार आदि से कराहते हुए असहाय लोगों की चीत्कार नहीं सुनाई देगी। लगता है जब अनाचार की पराकाष्ठा हो जायेगी लोगों का जीना मुश्किल हो जाएगा। मनुष्यरूपी पशुओं का चारों ओर बर्बर अत्याचार छा जाएगा। तथाकथित बुद्धिजीवियों के अपने बच्चे के साथ अपहरण और बलात्कार जैसी घटनायें होंगी। तब शायद आज की महान संस्कृति के पुरोधा रहे महर्षि दयानन्द जैसे ऋषियों की एक-एक बात ध्यानमें आएगी। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। कि **फिर पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत।** ❀❀❀

'तपोभूमि' अक्टूबर 2018 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	शान्ता	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	बाल मनुस्मृति	12.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	ओंकार उपासना	12.00
विदुर नीति	40.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	दादी पोती की बातें	10.00
चाणक्य नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
नित्य कर्म विधि	32.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शान्ति कथा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
यज्ञमय जीवन	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	गायत्री गौरव	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
		जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2018 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

सम्पादक
आर्य संदेश कार्यालय, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ....
15 हनुमान रोड, नईदिल्ली–110001 ....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल– 9759804182

प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600